

भारतवर्ष के लिए उद्योगपतियों की आर्थिक योजना

लेखक

श्री अमर नारायण अग्रवाल, एम० ए०,
अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय; सम्पादक, इंडियन जर्नल
आव इकनामिक्स; मुरारका-पुरस्कार-विजेता;
लेखक “समाजवाद की रूप रेखा”
“ग्रामीण अर्थशास्त्र और
सहकारिता,” आदि ।

प्रकाशक

साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद

१९४४

प्रकाशक : साहित्य-भवन-लिमिटेड, प्रयाग ।

प्रथम बार मूल्य |||८)

मुद्रक : श्री गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

भूमिका

उद्योगपतियों की योजना ने, जिसका पूरा नाम “भारतवर्ष की आर्थिक उन्नति के लिये एक योजना” है, इस देश के आर्थिक इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया है और आर्थिक योजना सम्बंधी विवेचन और विचारों को एक क्रियात्मक और वास्तविक रूप दे दिया है। यह ‘योजना’ केवल ५५ पृष्ठ की एक पुस्तक है; पर यह इतने तात्त्विक महत्व की है कि यह आर्थिक रंग-स्थल में सर्व प्रथम स्थान ग्रहण कर चुकी है। इसके प्रशंसक तथा आलोचक, दोनों ही ने इसका काफी अध्ययन किया है। इसके लेखकों ने इसका प्रथम भाग इस आशा में प्रकाशित किया था कि यह निर्माणकारक आलोचना उत्साहित करेगी और इस प्रकार को कार्य-प्रणाली में जन-साधारण की दिलचस्पी बढ़ायेगी। वास्तव में इस आशा की इन दोनों दिशाओं में बहुत बड़े अंश में पूर्ति हो चुकी है।

अतः एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित करने में जो कि इस योजना पर विवेचनात्मक, आलोचनात्मक, निर्माणकारक एवं निष्पक्ष दृष्टि से प्रकाश डाले, किसी प्रकार की क्षमायाचना की आवश्यकता नहीं। प्रस्तुत पुस्तक चार उद्देश्यों को लेकर लिखी गई है। इसका प्रथम उद्देश्य है इस महत्वपूर्ण पुस्तक का सरल और सीधे तरीके से विवेचन करना। पर यह उद्देश्य मेरे प्रमुख उद्देश्य के—जो कि योजना की निष्पक्ष दृष्टि से आलोचना करना है—अंतर्गत है। मेरा तीसरा उद्देश्य, जो दूसरे उद्देश्य के साथ जाता है, इसके लेखकों को उन बातों, विचारों एवं नीतियों के लिये श्रेय देना जो आर्थिक दृष्टिकोण से ठीक और लाभदायक है। अंत में, मैंने इस महत्वपूर्ण योजना के दोहराने और उसमें परिवर्तन करने के लिये निर्माणकारी प्रस्ताव उपस्थित किये हैं; बिना इसके मेरे आलोचनात्मक विचार निर्मूल्य रहते।

अतः मैं स्वयं को इस योजना का आलोचक तथा प्रशंसक, दोनों ही कह सकता हूँ। मेरी यह सच्ची अभिलाषा है कि इस योजना में परिवर्तन किये जावें

और इसका क्षेत्र बढ़ाया जावे। पर, वर्तमान राजनीतिक अवस्था को दृष्टि में रखते हुए मैं इस योजना के, इसी हालत में, कार्यरूप में रखे जाने के लिये चिंतित हूँ।

मैं अपने मित्र, मि० आर० जी० मूर्ति, बम्बई के पत्र कामर्स (Commerce) के विद्वान सम्पादक, जिनके सुप्रसिद्ध साप्ताहिक में मैंने इस विषय पर कई लेख लिखे थे, का बहुत आभारी हूँ। मैं प्रोफेसर सुधीर कुमार रुद्र, एम० ए० (कैम्ब्रिज), यू० पी० सरकार के आर्थिक-परामर्शदाता, का भी श्रेणी हूँ क्योंकि वे पग-पग पर मेरी सराहना करते रहे हैं और मुझे उत्तरोत्तर उत्साहित करते रहे हैं।

विश्व-विद्यालय, }
प्रयाग।

अमर नारायण अग्रवाल

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ
भूमिका	१-२
१ उद्योगपतियों की योजना का महत्व	१
२ योजना का ध्येय	६
३ औद्योगिक उन्नति की योजना	१६
४ उद्योग और कृषि का पारस्परिक सम्बंध	२३
५ कृषि सम्बन्धी उन्नति का कार्यक्रम	२९
६ व्यापार, यातायात, बैंकिंग और बीमा सम्बन्धी योजना	३५
७ कुशल व्यक्तियों का प्रश्न	४१
८ योजना का धन-सम्बन्धी पहलू	४६
९ हमारे प्रस्ताव	५६

अध्याय १

उद्योगपतियों की योजना का महत्व

सन् १९४४ के प्रारम्भ ने इस देश के आठ प्रमुख उद्योगपतियों ने—
जिनके नाम सर् पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, श्री जे० आर० डी० ताता, श्री जी०
डी० बिड़ला, सर् आर्देशीर दलाल, सर् श्री राम, श्री कस्तूरभाई लाल भाई, श्री
ए० डी० शराफ और डाक्टर जॉन मथाई हैं—भारतवर्ष के लिये एक आर्थिक
योजना तैयार की। इस पुस्तक का नाम है “भारतवर्ष की आर्थिक उन्नति
के लिये एक योजना।”^१ इस पुस्तक का प्रकाशन हमारे देश के लिये
वर्तमान काल की सबसे प्रमुख आर्थिक घटना है। भारतवर्ष के लिये तैयार की
जाने वाली यह सबसे पहली योजना है और इस कारण इसकी ओर अर्थशास्त्रियों,
राजनीतिज्ञों, व्यापारियों, सरकार एवं साधारण जनता का काफी ध्यान गया
है। गत महीनों में इस योजना पर पूरी तरह से प्रकाश डालने में, उसकी
प्रशंसा करने में एवं उसके दोष खोज निकालने में देश के प्रमुख आर्थिक पत्रों
ने जी जान से चेष्टा की है और जन-प्रिय साधारण दैनिक, साप्ताहिक एवं
मासिक पत्रों ने उनका पूरी तरह से अनुगमन किया है।

जब से रूस ने योजनाओं के द्वारा अपनी आर्थिक अवस्था में आश्चर्य-
जनक उन्नति की, योरूप के फासिस्ट राष्ट्रों ने योजना के बूते पर अपनी शक्ति
में बहुत परिवर्तन कर लिया और पूँजीवादी देशों ने मज़बूर होकर, पर रुक-
रुक कर, योजनात्मक दिशा में कदम बढ़ाना आरम्भ किया, तभी से योजनाएँ
भारतवासियों के दिमाग में चक्कर काट रही हैं। इस दिशा में कार्यात्मक काम
सबसे पहले कांग्रेस ने किया और प० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में
योजना-समिति की नियुक्ति की। पर इस समिति के उपयोगी जीवन का देश की

राजनीतिक प्रगति ने अत कर दिया, जो कि बच्चा-बच्चा जानता है। भारत-वर्ष के प्रसिद्ध योजना के हिमायती सर् एम० विस्वेश्वरैया हैं जिन्होंने वृद्धावस्था के होते हुए भी, अपने लेखों और पुस्तकों द्वारा और अखिल-भारतवर्षीय-उद्योगपति-संघ की स्थापना कर, योजना की समस्या को वर्तमान आर्थिक वादविवाद में सबसे आगे रक्खा है। उनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है “उद्योगों के द्वारा समृद्धि”^१ जिसमें उन्होंने औद्योगिक योजना को एक क्रियात्मक रूप में उपस्थित किया है। भारत-सरकार ने अपनी निद्रा हाल ही में त्यागी है और उन्होंने इस दिशा में जो कुछ भी काम अब तक किये हैं वे सब अभाग्यवश अध-कचरे और सकीर्ण हैं। इसका एक प्रमाण तो यही है कि उन्होंने आर्थिक-यंत्र के सब महत्वपूर्ण पुर्जों को छोड़ कर, सबसे पहले एक सड़कों की योजना और साजेंट-शिक्ला-योजना तैयार कराई ! और यह नई दिल्ली और शिमले के सरकारी अफसरों की योजना-रहित योजनात्मक चेष्टाओं का ही परिणाम है कि साजेंट-योजना के बनते ही उसको ध्वस कर दिया गया; और हमें भय है कि भोर-स्वास्थ्य-योजना का, जो कि अभी तैयार की जा रही है, भी यही दुर्भाग्य होगा। देश के अर्थशास्त्रियों ने कोई खास योजना तो अभी नहीं बनाई पर उनके अध्ययन और विचारों ने इस दिशा में काफी प्रकाश फैलाया है। उद्योगपतियों की आर्थिक योजना ही हमारे देश की सबसे पहली, सर्वतोन्मुखी, अक्र-सुसज्जित और बड़ी आयोजना है। निस्सन्देह, योजना-सम्बन्धी सब भावी विचारों का यह योजना प्रस्थान-बिंदु होगी। अतः इसके सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक महत्व का स्वयं ही अनुमान लगाया जा सकता है।

उद्योगपतियों की योजना की एक श्रेष्ठता यह है कि यह सर्वतोन्मुखी है। इस दिशा में अब तक जो भी काम हुआ है वह अध-कचरा और सकीर्ण हुआ है; और इसमें और उद्योगपतियों की योजना में आकाश-पाताल का अंतर है। आर्थिक योजना का यह गुण है कि यह आर्थिक-व्यवस्था के हर पहलू, हरेक भाग पर समुचित प्रकाश डालती है और उनको सम्पूर्ण,

^१*Prosperity Through Industry by Sir M. Visvesvaraya*

उद्योगपतियों की योजना का महत्व

व्यवस्थित एवं संगठित रूप में देखती है। यह बहुत सतोष का वि- है कि उद्योगपतियों ने आर्थिक-यंत्र के सुगठित और संबंधित विभागों औरों की भाँति अलग-अलग रूप में अथवा स्वतंत्र दृष्टि से नहीं देखा। उन योजना के क्षेत्र में आर्थिक-व्यवस्था के सभी अंगों का समावेश है और उन पारस्परिक अनुपात लाने की चेष्टा की गई है। ऐसा कार्य भारत-महासा- के इस और अभी तक नहीं किया गया। पहली बार इस योजना ने हम- राष्ट्रीय आवश्यकताओं और साधनों का पूरा व्यौरा तैयार किया है; अ- हमारे सामने भावी काय प्रणाली की तस्वीर उपस्थित की है और आर्थि- लक्ष्यों (targets) को स्थिर किया है जिनके द्वारा हमारा आर्थि- कल्याण हो सकता है।

इस योजना की एक अन्य श्रृंखला यह है कि इसमें सब अनुमान अ- और सख्याओं में लगाये गये हैं और कारे शब्दों से ही काम नहीं लिया गया- यह सीधे-सादे, निश्चित और साफ़ व्यापारिक चिट्ठे की भाँति है। हम- देश में विश्वासनीय अंकों (statistics) की बहुत कमी है। आर्थि- जाँच-कमिटी, वाउले-राबर्टसन-विवेचना और कलकत्ता-अकशास्त्र-संस्था- कमिटी आदि ने इस पहलू पर काफ़ी प्रकाश डाला है। विश्वस्त अंकों- कमी हमारे देश में आर्थिक योजना के अब तक न बनाये जाने की ए- प्रमुख कारण रही है। पर इस कठिनाई के रहते हुए भी, “आठ उद्योगपतियों- ने उचित अंकों का प्रयोग किया है। जहाँ विश्वस्त अंक अप्राप्य हैं व- समुचित अंकों का अनुमान दिया है और एक ऐसी योजना तैयार की- उसकी और चाहे किसी दिशा में आलोचना की जा सके पर उसमें अ- की कमी अथवा उनकी ग़लती या उनके ग़लत अनुमान किये जाने के आघ- पर कोई भी आलोचना नहीं की जा सकती। इसका अर्थ यह नहीं कि इ- योजना में जितने भी अनुमान और अंक दिये गये हैं, वे सब वेद-वाक्य- और पूर्ण रूप से एक दम ठीक प्रमाणित होंगे। ये तो केवल साकेति- मात्र हैं। इस योजना के बनाने वाले इन अंकों के एकदम ठीक होने- दावा भी नहीं करते। इन्होंने साफ-साफ़ शब्दों में कहा है कि योजना में दि-

गये अनेकों व्यय, उत्पत्ति आय सम्बन्धी अनुमानों के विषय में यह बता देना आवश्यक है कि उन अंकों की कमी के कारण जिन पर वे आधारित हैं, वे केवल लगभग ठीक हैं और उनको बिल्कुल ठीक न मान कर उदाहरणार्थ समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त, योजना का मूल्य उसमें दिये गये अंकों में नहीं है जितना कि उसके पीछे छिपी हुई आर्थिक-नीति में है। अतः स्पष्ट है कि योजना की अक-सम्बन्धी आलोचना निराधार और निरर्थक है।

इस योजना में हमारी आर्थिक-व्यवस्था के औद्योगिक अग्र की उन्नति पर पर्याप्त मात्रा में ध्यान दिया गया है और इस विषय पर जो विचार प्रकट किये गये हैं वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। औद्योगिक-अग्र के विविध विभागों की उन्नति स्थिर करते समय एक सतुलित दृष्टि से काम लिया गया है; और जिस सीमा तक यह योजना हमारे औद्योगिक विकास को बढ़ाना चाहती है वह जन-साधारण की इच्छा और अभिलाषा के अनुकूल है। हमारे देश को औद्योगीकरण की नितान्त आवश्यकता है, और ऐसी अवस्था में “आठ उद्योगपतियों” तत्सम्बन्धी विचार बहुत मूल्यवान हैं।

पर इस योजना का सबसे महत्वपूर्ण अग्र धन-सम्बन्धी है। इसने हमारे देश में पहली बार यह बताने की कोशिश की है कि इतने महाकाय आर्थिक कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये हम कहाँ से रुपया प्राप्त कर सकते हैं। अब तक भारत-सरकार योजना को केवल बातों में ही महत्व देती रही थी और उनकी बातों एवं विचारों में गम्भीरता एवं सच्ची लगन की कमी खटकती थी। अर्थशास्त्रियों ने भी आर्थिक-व्यवस्था के उत्पादक-विभागों एवं राष्ट्र निर्माता तथा व्यय-विभागों के पारस्परिक सम्बन्ध को समझने में असमर्थता दिखाई, और उनके सैद्धान्तिक विवेचन में एक सूनापन और अकार्यशीलता थी जिससे प्रतीत होता था कि योजना हमारे सामने कोई निकट समस्या नहीं है। साधारण जटिलता और प्रेस का ध्यान इस ओर गया ही नहीं था और वे यह सोचते थे कि योजनात्मक उन्नति हमारी पहुँच के बाहर है और इसका प्रश्न ही नहीं उठता ! वातावरण में, इस प्रकार, चारों ओर निराशा और निष्क्रियता के बादल छाये हुए थे। उद्योगपतियों की

योजना का जन्म इन्हीं म्लान दशाओं में हुआ। पर इसके रचयिताओं ने अपनी सूझ और व्यापारिक बुद्धि के बल पर उस वस्तु को प्रकाश में रखा जिस पर कि अब तक अँधेरा छाया हुआ था और उन्होंने बताया कि एक आर्थिक उन्नति के कार्यक्रम के अंतर्गत उत्पादक विभागों और व्यय-विभागों में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस योजना को कार्यरूप में परिणित करने के लिये १०,००० करोड़ रुपयों की आवश्यकता पड़ेगी जिनको प्राप्त करने के उपाय क्रियात्मक और उपयुक्त हैं। रुपये की बाधा को हटाना, जो कि योजना के मार्ग में सब से कठिन बाधा थी, इस योजना का सबसे महत्वपूर्ण गुण है।

इस योजना को बनाने में बहुत सावधानी और कुशलता से काम लिया गया है। जहाँ तक हो सका है भ्रमात्मक और अस्पष्ट वाद-विवादों को दूर रखा गया है। यह मुख्यतः योजना के धन-सम्बन्धी पहलू पर अधिक प्रकाश डालती है, यद्यपि कि साधारण नीति की बातें उचित स्थानों पर ठीक रूप से सम्मिलित कर ली गई हैं। उपाय-प्रणाली, टैक्नीक और संगठन, धन और आय के वितरण एवं सरकारी अधिकार एवं रोकथाम की मात्रा आदि विषय निस्संदेह बहुत महत्वपूर्ण हैं, पर विना बहुत सा वाद-विवाद उठाये उन पर विचार नहीं किया जा सकता। अतः लेखकों ने बहुत अन्वष्टा किया कि इन बातों को आगे के लिये रख छोड़ा और अभी विवाद-रहित एव मूल विचारों को ही सबसे पहले सामने रखा। उनकी भाषा, शैली, व्यवहार आदि पर असाधारण सावधानी की मुहर लगी हुई है जो कि उन्होंने बराबर अपने साथ चोली-दामन की भाँति रक्खी है। पर, इतनी सावधानी और पर्वाह के होते हुए भी यह योजना दोषों से मुक्त नहीं। ये दोष कमी और भूल चूक के रूप में हमारे सामने आते हैं और पारस्परिक-सम्बन्ध एव संतुलन से इनका रिश्ता है।

अध्याय २

योजना का ध्येय

योजनात्मक उन्नति—क्यों और किस लिये ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका उत्तर उद्योगपतियों ने अपनी योजना के आरम्भ में ही दे दिया है। योजना का आधार-कारण और आवश्यकता है हमारी राष्ट्रीय आय और रहन-सहन के दर्जे को बढ़ाने की ज़रूरत, जो आजकल बहुत नीचे हैं।

“आठ उद्योगपतियों” ने स्पष्ट रूप में दिखा दिया है कि हमारी प्रति-व्यक्ति आय ससार के अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। डाक्टर वी० के० आर० वी० राव की गणानुसार यह अंक केवल ६५ रु० है। पर यह हिसाब उन्होंने १९३१-३२ में लगाया था। तब से हमारी जन संख्या लगभग ५० लाख प्रति वर्ष की गति से बढ़ती रही है, पर उसके साथ-साथ हमारी राष्ट्रीय आय बिल्कुल नहीं बढ़ी। अतः योजना के लेखकों का विश्वास है कि हमारी प्रति-व्यक्ति आय ६५) से भी कम है। ऐसी शोचनीय दशा में उन्नति की बहुत आवश्यकता है, और इसकी पूर्ति करना ही “योजना” का एक मात्र उद्देश्य है। लेखकगण साफ-साफ कहते हैं कि “योजनात्मक आर्थिक-प्रणाली का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह राष्ट्रीय आय इतनी बढ़ा दे कि अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति के पास इतने साधन शेष रहें कि जिनसे वह जीवन का मनोरंजन कर सके और सांस्कृतिक क्रियाओं में भाग ले सके। हमारे कच्चेमाल, शक्ति एवं श्रमी सम्बंधी संभव साधनों का वर्तमान ज्ञान अधूरा होने पर भी, हमें विश्वास दिलाता है कि उचित योजना और अनुकूल संगठन के बूते पर हम कुछ काल में ही अपनी राष्ट्रीय आय इतनी बढ़ा सकते हैं कि वह जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये काफी से अधिक हो।” उनकी योजना का लक्ष्य है १५ वर्ष अंदर हमारी राष्ट्रीय आय को तिगुनी कर देना। सन् १९३१-३२ में हमारी राष्ट्रीय आय १,७६६ करोड़ रुपये आँकी गई थी; और यह संख्या ये उद्योगपति

१५ साल में ५, ३०० करोड़ रुपये तक पहुँचा देना चाहते हैं। यदि देशी रियासतों को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो हमारी कुल राष्ट्रीय आय २,२०० करोड़ रुपये से लेकर ६,६०० करोड़ रुपये हो जायगी। हमारी जन-संख्या इस समय बहुत प्रगति से बढ़ रही है, और यह माना जा सकता है कि १९४१ की जनगणना द्वारा बताई हुई ५० लाख व्यक्ति प्रति वर्ष की वृद्धि भविष्य में भी जारी रहेगी। अतः यदि यह मान लिया जाय कि इस योजना का १९४५ सन् में सूत्रपात कर दिया जाय, तो देश की आवादी सन् १९६० में ४८-९ करोड़ हो जायगी। प्रति व्यक्ति आय के शब्दों में इसका आशय यह हुआ कि यदि हमारी राष्ट्रीय आय इतने समय में तिगुनी हो जाय, तो हमारी प्रति-व्यक्ति आमदनी दुगुनी हो जायगी। अन्य शब्दों में, यह १३५ रु० की सीमा को छू लेगी।

इस उद्देश्य की पूर्ति कृषि की उत्पत्ति १३० प्रतिशत बढ़ाकर और उद्योगों की उत्पत्ति ५०० प्रतिशत बढ़ा कर की जायगी। पूँजी की लागत अपूर्व मात्रा में होगी : १०,००० करोड़ रुपये ! पर, लेखकों के मतानुसार, यह “हमारे साधनों की सीमा के अन्दर है” और “ऐसा व्यय देश के लिये अच्छी और लाभ-दायक लागत है।” इन योजनाओं ने स्वप्न या युटोपिया का चित्र आकृत नहीं किया और न वे कोरे वाद या अतिशयोक्ति-निर्माता हैं। वे क्रियात्मक और वास्तविक दृष्टिकोण के व्यक्ति हैं और उनके लक्ष्य उदार और प्राप्य हैं और समझ में आ सकने वाले हैं। रूस ने, जिसमें योजनात्मक उन्नति का संसार में सब से पहले सूत्रपात किया, पहली पंचवर्षीय योजना के पश्चात् ही आश्चर्य-जनक कारनामे कर दिखाये, १९२८ के आधार पर, औद्योगिक उत्पत्ति के सकेतांक ३६९ के निशाने पर पहुँच गये; उत्पादक माल के ४८१ तक; और उपभोग के सामान के २७४ तक, और राष्ट्रीय आय २५ बिलियन रूबल से बढ़कर १२५ बिलियन रूबल हो गयी। सर एम० बिस्वेश्वरैया केवल औद्योगिक योजना के ही द्वारा हमारी राष्ट्रीय आय ५ या सात वर्ष में दुगुनी कर देने का दावा करते हैं। इसके मुकाबले में इन लेखकों का वायदा समर्थार्थ और सावधान है।

इन लेखकों का मत है कि १३५ ६० प्रति वर्ष की आमदनी से एक व्यक्ति अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने के अतिरिक्त अन्य इच्छाओं को भी पूरा कर सकेगा। पर यह इस माने हुए आधार पर कि १९३१-३६ की क़ीमतों के औसत दर आगे चल कर भी जारी रहेंगे। बिना इस प्रकार की कल्पना के आगे बढ़ना असम्भव है। यदि किसी आलोचक के मत में युद्धोत्तर क़ीमतों की दरें (जब कि यह योजना कार्यरूप में परिणित की जाय) कुछ और होंगी, तो वह उस दर के हिसाब से अनुमान लगा सकता है। इससे “योजना” में बताये हुए प्रस्तावों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा और न लेखकों के चित्र अथवा उसके अनुपात में ही कोई दोष आवेगा। रुपया केवल माप-दण्ड है, और माप-दण्ड अपरिवर्तित बनाये रखने के लिये ऐसी कल्पना नितान्त आवश्यक है। अन्यथा इन उद्योगपतियों ने वस्तुओं एवं सेवाओं के परिमाणों को ही सामने रक्खा है, जैसा उन्हें करना चाहिये था; और चाहे आप किसी भी क़ीमत के दर की कल्पना करें, ये परिमाण वही रहेंगे, बदलेगे नहीं।

यह निस्संदेह है कि राष्ट्रीय आय की इतनी वृद्धि हमारे रहन-सहन के दर्जों को वर्तमान समरेखा से बहुत ऊँचा कर देगी। यह दर्जा कितना ऊँचा हो जायगा, इसका व्यौरा संख्यात्मक एवं पक्के तौर पर दिया गया है जिससे प्रतीत होता है कि उन्होंने इस योजना के निर्माण करने में ठोस विचार और व्यापार-कुशलता दोनों का ही पूरा-पूरा प्रयोग किया है। रहन-सहन के प्रमुख अंग पाँच हैं; भोजन, घर, वस्त्र, स्वास्थ्य और शिक्षा। इनमें से प्रत्येक का विस्तार, स्पष्ट और ठीक-ठीक विवरण दिया गया है।

रहन-सहन के दर्जों में सब से महत्वपूर्ण स्थान भोजन का है। भोजन स्वास्थ्यवर्धक और काफी होना चाहिये। विद्वानों के कथनानुसार हमारे देश-वासियों के लिये उचित मात्रा में शक्ति देने वाले आहार का शक्ति-मूल्य (energy value) २,६०० कैलोरीज़ होना चाहिये। रसोई घर व थाली में छीजने वाले भाग को जोड़ देने से, यह मात्रा बढ़ कर २,८०० कैलोरीज़ हो जाती है। हमारी वर्तमान आवादी के अधिकांश सदस्यों को आजकल

काफी मात्रा में उचित भोजन नहीं मिलता, केवल इसीलिये नहीं कि हमारे देश में खाद्य-सामग्री का वितरण सम नहीं प्रत्युत इस लिये भी कि हमारे यहाँ इतनी मात्रा में सामग्री उत्पन्न ही नहीं की जाती कि इतना अच्छा आहार प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हो सके। यदि हम मान लें कि यह योजना खाद्य-पदार्थों की उत्पत्ति आवश्यकतानुसार बढ़ा देगी, तो ऐसे आहार का, युद्धपूर्व मूल्यों के अनुसार, ६५ ६० दाम होगा। इस गणना में हम बड़े और बच्चों के आहार के मात्रा-भेद पर ध्यान नहीं देते। अतः हमारी वर्तमान जनसंख्या को समुचित रूप से स्वास्थ्यपूर्ण रखने के लिये हमें २,१०० करोड़ रुपये प्रति वर्ष खर्च करने पड़ेंगे।

१३० ६० प्रति-व्यक्ति आय में एक मनुष्य अपना तन ढकने के लिये काफी कपड़ा भी खरीद सकेगा। यह अनुमान लगाना कि हमारे देश में औसतन कितना गज कपड़ा प्रति व्यक्ति के लिये काफी होगा कठिन काम है क्योंकि इस प्रकार के अनुमान अभी तक नहीं लगाये गये। पर राष्ट्रीय-योजना-समिति के मतानुसार ३० गज कपड़ा फी आदमी को हर साल देने से काम चल जायगा। उद्योगपतियों ने इस अंक को स्वीकार किया है और हिसाब लगाया है कि, फी गज का दाम ३१ आना मानकर, हमें प्रति वर्ष २५५ करोड़ रुपये खर्च करने पड़ेंगे। यह व्यय प्रति व्यक्ति ६॥॥ आकर पड़ता है।

गहने के लिये अच्छे और काफी घर भी चाहिये और इनके लिये प्रबंध करने की चेष्टा उद्योगपतियों ने की है। बम्बई की किराया-परीक्षा-समिति ने बताया था कि एक व्यक्ति को फी घंटे ३,००० क्यूबिक फीट ताजी हवा की आवश्यकता होती है अन्य शब्दों में प्रति व्यक्ति को लगभग १०० वर्ग फीट रहने का स्थान चाहिये। भारतवर्ष में ७-६ करोड़ मकान मौजूद हैं— १ करोड़ घर शहरों में और ६ करोड़ गाँवों में। यह अवस्था बहुत शोचनीय है। मुख्यकर, हमारे औद्योगिक केंद्रों में घर की समस्या ने विषम रूप धारण कर लिया है और वहाँ सुधार की आवश्यकता बहुत ज्यादा है। १९४१ की जन-गणना के अनुसार, प्रत्येक घर पाँच व्यक्तियों का औसत पड़ता है। इस हिसाब से प्रत्येक घर का क्षेत्रफल कम से कम २०० वर्ग फीट

होना चाहिये। ऐसे मकान के बनाने में हमें ४०० रुपये गाँव में और ८०० रुपये शहर में व्यय करने पड़ेंगे। सब स्त्री-पुरुषों को काफी बड़ा रहने के लिये घर हो जाय, इसके लिये हमें शहर, कस्बों और गाँवों में बहुत से मकान बनवाने पड़ेंगे। बहुत से वर्तमान घर पुराने, स्वास्थ्य-नाशक और असतोषप्रद हैं; और उन्हें तोड़-फोड़ कर दोबारा बनाना पड़ेगा। नये मकानों के बनवाने और पुराने मकानों के पुनर्निर्माण में हमको लगभग १,४०० करोड़ रुपये व्यय करने पड़ेंगे। १५ वर्ष के अंदर बढ़ जाने वाली आवादी को भी इस अनुमान में सम्मिलित कर लेना चाहिये। इस नई आवादी के लिये घर बनवाने में हमें ८०० करोड़ रुपये लगाने पड़ेंगे। इस प्रकार कुल लागत का जोड़ २,२०० करोड़ रुपये हुआ। अगर हमें घरों की मरम्मत में पूँजी का ७२ प्रति शत हर साल खर्च करना पड़ा तो हमें ३१८ करोड़ रुपया इस प्रकार व्यय करना होगा। इस रकम का केवल आवर्त्तक व्यय (Recurring Expenditure) देशवासियों को अपनी व्यक्तिगत आय में से खर्च करना पड़ेगा; अतः इसकी गणना रहन-सहन के व्यय में कर ली गई है।

घर के बाद प्रश्न स्वास्थ्य-रक्षा का आता है, और इसके लिये भी “आठ उद्योगपतियों” ने प्रबन्ध किया है। आजकल हिन्दुस्तान जन्म और मरण की प्रगति में अन्य देशों से कहीं बड़ा चढ़ा है। इसलिये हमें बीमारी को रोकने वाले कार्य (जैसे शहरों की सफाई, स्वच्छ जल का प्रबन्ध, आदि) एवं बीमारों को ठीक करने वाले कार्य (जैसे डाक्टरों और अस्पतालों का इतना ज्ञान करना), दोनों ही करने होंगे। सन् १९३६ में हमारे देश में लगभग ७,३०० अस्पताल और दवाघर थे जिनमें ७४,००० खाटे थी। इस प्रकार हर अस्पताल पीछे ४१,००० व्यक्ति और हर खाट पीछे ४,००० व्यक्तियों का औसत आता है, जिससे हमारी कमी का अनुमान लगाया जा सकता है। इन योजना-निर्माताओं के अनुसार, न्यूनतम रहन-सहन के दर्जे की रक्षा के लिये हमें निम्नलिखित काम करने पड़ेंगे :—

- (१) गाँवों और शहरों में सफाई एवं स्वच्छ जल का समुचित प्रबन्ध ;
- (२) हर गाँव में एक औषधालय ;

(३) शहरो मे अस्पताल और जच्चा-घर; और

(४) यक्ष्मा, कोढ़, आतशक आदि भयानक रोगों की चिकित्सा के लिये विशिष्ट अस्पताल ।

इन समस्त चिकित्सा के स्थानों के स्थापित करने मे हमे २८१ करोड़ रुपये का अनावर्त्तक व्यय (Non-recurring-Expenditure) करना पड़ेगा और इनका आवर्त्तक व्यय १८५ करोड़ रुपये होगा । इनमे मे आवर्त्तक व्यय की गणना रहन-सहन के व्यय में की जायगी ।

सफाई और स्वच्छ जल के प्रबध करने मे हमे १०० करोड़ रुपया खर्च करना होगा और मरम्मत का व्यय ७½ करोड़ रुपये होगा । औसतन, हर गाँव मे ५१७ व्यक्ति रहते हैं, और वहाँ एक डाक्टर और दो नर्सों के रखने का प्रस्ताव किया गया है । इस प्रबध का व्यय ३५५ करोड़ रुपये होगा, जिसमे से १३२ करोड़ रुपये अस्पताल इत्यादि के बनाने तथा अन्य सामान खरीदने मे लगाने पड़ेंगे । शहर के अस्पताल अधिक बड़े होंगे । प्रत्येक शहर मे दो अस्पताल होंगे जिनमे प्रत्येक मे ४० खाटे होंगी । इनके बनाने और सजाने मे ३८-५ करोड़ रुपये प्रति वर्ष खर्च किया जायगा जिनमे से १६-५ करोड़ आवर्त्तक व्यय होगा । हर शहर मे एक जच्चा-घर भी होगा जिनके बनाने आदि में ८ करोड़ रुपये लगाने पड़ेंगे और जिनको चलाने के लिये प्रति वर्ष ६-६ करोड़ रुपये की आवश्यकता पड़ेगी । यक्ष्मा, कोढ़ आदि की चिकित्सा के लिये जो विशिष्ट अस्पताल बनाये जायेंगे उनका अनावर्त्तक व्यय १६ करोड़ रुपये तथा आवर्त्तक व्यय १२५ करोड़ होगा । इस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षा के सब साधनों पर इस प्रकार खर्च किया जायगा :—

(करोड़ रुपये)

	अनावर्त्तक व्यय	आवर्त्तक व्यय
सफाई, जल, आदि	...	१००
गाँवों के दवा-घर	..	१३२
आम अस्पताल (शहरो के)	...	२२
जच्चा-घर	...	८
		५-५

विशिष्ट-चिकित्सालय	...	१६	१२.५
जोड़		२८१	१८५.०

रहन-सहन के दर्जे का पाँचवाँ अंग शिक्षा है। योजना-निर्माताओं ने प्रारम्भिक एवं प्रौढ शिक्षा के लिये उचित प्रबन्ध करने की सलाह दी है जिससे कि सब को कम से कम लिखना-पढ़ना आ जाय। प्रौढ शिक्षा की लागत ६६ करोड़ रुपये होगी। प्रारम्भिक शिक्षा का अनावर्तक-व्यय ८६ करोड़ रुपये होगा; और आवर्तक व्यय ८८ करोड़ रुपये जो रहन-सहन के व्यय में सम्मिलित कर लिया गया है।

इस प्रकार इस योजना के अनुसार न्यूनतम रहन-सहन के निम्नलिखित अनिवार्य अंग हैं :—२,६०० कैलोरी देने वाला आहार, ३० गज कपड़ा, १०० वर्ग गज का घर, स्वास्थ्य-रक्षा के साधन और शिक्षा का प्रबन्ध। इनको प्राप्त करने के लिये हमें इस प्रकार व्यय करना पड़ेगा :—

व्यय की मात्रा			
(करोड़ रुपये में)			
भोजन की लागत	...		२,१००
वस्त्रों की लागत	...		२६०
घर पर अनावर्तक व्यय	...		२६०
स्वास्थ्य रक्षा पर अनावर्तक व्यय	...		१६०
प्रारम्भिक शिक्षा पर अनावर्तक व्यय	...		६०
जोड़...			२,६००

हरेक मनुष्य का रहन-सहन इतना ऊँचा रखने के लिये, युद्ध-पूर्व मूल्य के दर पर, ७४ रु० प्रति वर्ष व्यय करने पड़ेंगे और हरेक की आय कम से कम इतनी अवश्य होनी चाहिये। हमारी वर्तमान प्रति-व्यक्ति आय (१६३१-३२ का अनुमान) केवल ६५ रु० है; और क्योंकि उस समय से लेकर अब

तक जनसंख्या मे काफी वृद्धि हो चुकी है परन्तु उत्पत्ति में उतनी उन्नति नहीं हुई, इसलिये वर्तमान प्रति-व्यक्ति आय इससे भी कम होगी ।

इस ७४ रु० प्रति वर्ष की गणना मे व्यय के छोटे-छोटे विषय सम्मिलित नहीं किये गये । ईंधन, पर्यटन, चिट्ठी पत्री, धार्मिक विषय, विवाह, मृत्यु, गहने, और सामाजिक आवश्यकताओं पर जो व्यय किया जाता है, वह काफी महत्वपूर्ण है और उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती । इसके अतिरिक्त, यदि मनुष्यों को शिक्षित किया जावेगा तो उन्हें पुस्तकों और अखबारों की आवश्यकता पड़ेगी, और यदि उन्हें रहने को घर दिये जायेंगे तो उनमे रखने के लिये फर्नीचर तथा अन्य सामान खरीदना जरूरी होगा । फिर बचत भी करना आवश्यक है । योजना को सफल बनाने के लिये इन लेखकों के मत मे बचत का ४,००० रु० इकट्ठा करना आवश्यक है । अर्थात् औसतन ७ रु० प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष बचत अवश्य होनी चाहिये । अकेले इसी कारण प्रति व्यक्ति आय का अंक ७४ रुपये से बढ़ कर ८१ रुपये हो जाना चाहिये । पर हमारा विचार है कि इन्हीं सब खर्चों का खयाल करके इन लेखकों ने प्रति व्यक्ति आय का लक्ष्य १३० रु० रक्खा है, जिसने से ४१ रु० इस प्रकार के बिना बताये हुए खर्चों के लिये है ।

इस विषय मे एक बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है । इस बात की क्या गारंटी है कि ऊपर बताया हुआ रहन-सहन का दर्जा न्यूनतम न होकर औसत हो जायगा । क्योंकि यदि यह औसत दर्जा हुआ, तब इसका मतलब यह हुआ यदि किसी व्यक्ति के रहन-सहन का दर्जा इस औसत से अधिक हो तो अन्य किसी मनुष्य का दर्जा इससे अवश्य ही कम होगा । और यदि ऐसा वास्तव मे हुआ, तो योजना का उद्देश्य बहुत कमजोर हो जायगा: तब इस प्रकार की योजना की आवश्यकता एव उसके महत्व के विषय मे शका प्रकट की जा सकती है । इसका अर्थ यह है कि इन लेखकों का आय के वितरण के प्रश्न पर क्या मत है, यह जान लेना परमावश्यक है; और क्योंकि उन्होंने इस पर कुछ समय के बाद प्रकाश डालने का वायदा किया है, इस लिये इस तात्त्विक प्रश्न पर अंतिम राय कुछ काल

पश्चात् ही कायम की जा सकती है। योजनात्मक उन्नति का उद्देश्य है मानुषिक और प्राकृतिक साधनों का पूरा-पूरा और सर्वश्रेष्ठ उपयोग करना और मनुष्यों के आर्थिक कल्याण को उच्चतम बिंदु तक पहुँचाना।

इस योजना पर एक और आक्षेप किया जा सकता है। यदि यह सच है कि हमारी समस्त राष्ट्रीय आय केवल इतनी बढ़ाई जायगी कि प्रति व्यक्ति १३० रु० की आय आकर पड़े और यह १३० रु० उसके रहन-सहन पर व्यय हो जायगा, तो राष्ट्रीय आय का कोई भी बड़ा हिस्सा बचाया नहीं जा सकता; बचत केवल निम्नलिखित दो रूपों में हो सकती है : (१) कर के रूप में, जिनकी मात्रा, यह मानकर कि प्रति-व्यक्ति आय १३० रु० होगी जोकि वह स्वयं खर्च कर देगा, काफी कम होगी; और (२) व्यक्तिगत बचत के रूप में, जिसका अनुमान “आठ उद्योगपतियों” ने ४,००० करोड़ रुपये लगाया है। ऐसी दशा में इस योजना के पूँजी खर्च करने वाले अंग, जैसे शिक्षा, अन्वेषण, उद्योग, कृषि, यातायात, बीमा, बैंकिंग आदि, के लिये धन कहाँ से आएगा ? क्या वह सर्वदा विदेशों से उधार ही लिया जाता रहेगा—बिना चुकाने की चिंता किये हुए ? क्या हम अपनी बचत इतनी कम रखनी चाहिये कि विदेशी ऋण हमारे राजस्व के स्थायी लक्षण हो जाँय और हमें निरंतर व्याज देनी पड़े ? योजना का द्रव्य-सम्बन्धी रूप ऐसा होना चाहिये कि प्रारम्भिक आवश्यकताओं को विदेशी ऋण अथवा अन्य उपायों द्वारा पूरा करने के पश्चात् जहाँ तक सम्भव हो यह स्वयं आवश्यक द्रव्य का अपने आप प्रबंध कर ले। ऐसी दशा में प्रारम्भिक विदेशी ऋण के भुगतान का भी उचित रूप से प्रबंध किया जा सकेगा। पर यह योजना पूँजी जमा करने एवं विदेशी ऋण भुगतान करने के विषय पर ध्यान नहीं देती। यह कहना कि इस योजना को अपना पूरा रास्ता तय कर लेने दीजिये, उसके बाद इस प्रश्न पर विचार किया जायगा, ठीक नहीं; क्योंकि इसका मतलब वर्तमान प्रश्न को भविष्य के लिए टाल देना होगा। जब तक कि पहले से ही एक पूँजी का कोष एकत्रित नहीं किया जायगा, तब तक इस योजना का समय समाप्त हो जाने के बाद हमें फिर

विदेशी ऋण की आवश्यकता पड़ेगी; और इसकी अदायगी का प्रश्न कठिन-तर होता जायगा। यदि इतनी विशाल और सर्वोन्मुखी योजना, जिसमें तीन पच-वर्षीय योजनाएँ सम्मिलित हैं, द्रव्य के विषय में आत्म-निर्भरता का विषय किमी भी समय सामने नहीं रखती प्रत्युत हमारे रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा करने के लिये आराम से विदेशों में ऋण लेने का प्रस्ताव करती है, तो हम यही कहेंगे कि इसके निर्माताओं का दृष्टि-कोण संकीर्ण है। राष्ट्रीय आय का एक भाग उपभोग में तथा दूसरा उत्पत्ति में लगाया जावे और दोनों में ऐसा पारस्परिक सम्बन्ध रक्खा जावे कि न तो उपभोग में कमी आवे और न उत्पत्ति में ही कमी आवे—यह योजना की सफलता की प्रथम सीढ़ी है। हमारा भय है कि वर्तमान योजना समस्या पर इस दृष्टि-कोण से विचार नहीं करती। इसका उद्देश्य उत्पत्ति की केवल इतनी उन्नति करना है कि जिससे हमारी प्रति-व्यक्ति आय १३० रु० हो जाय, और यह पूँजी के संचय करने या विदेशी ऋण के चुकाने की चिंता ही नहीं करती। योजना का वास्तव में रूप ऐसा होना चाहिये कि प्रति-व्यक्ति आय के दुगुना करने के साथ-साथ, यह पूँजी संचय करने के लिये कानि गुंजाइश रखे।

अतः योजना के प्रश्न तक रहन-सहन के दर्जे के रास्ते से पहुँचने के लिये तो हम तत्पर हैं पर अकेले इसी विषय पर लगे रहने और भविष्य की लागत के लिये धन संचय का प्रश्न छोड़ देने को हम उपभोग के लिये दीवाना हो जाना और अपव्ययी बनजाना ही कहेंगे। हम इस योजना के लेखकों को विषय के इस पहलू पर ध्यान देने का न्यौता देते हैं; और प्रस्ताव करते हैं कि इसको दोबारा लिखते समय हमारी मानुषिक एवं प्राकृतिक साधनों का पूरा-पूरा उपयोग करने की चेष्टा करें, छूट जाने वाले विषयों पर समुचित ध्यान दे, और इस प्रकार उत्पन्न होने वाले अधिक धन में से एक अच्छा भाग पूँजी के संचय में लगायें।

अध्याय ३

औद्योगिक उन्नति की योजना

हम अपनी प्रति-व्यक्ति आय १५ वर्ष के अंदर किस प्रकार दुगनी कर सकते हैं ? स्पष्टतः इन उद्योगपतियों द्वारा बताये गये तरीके पर १०,००० करोड़ रुपये लगाकर । इस रकम में से ४,४८० करोड़ रुपये का देश की औद्योगिक उन्नति पर व्यय करने का आयोजन किया गया है । इस योजना के अनुसार, औद्योगीकरण हमारे आर्थिक कल्याण का प्रमुख मार्ग है ।

सन् १९३१-३२ में हमारी समस्त राष्ट्रीय आय का १७% भाग उद्योगों ने उत्पन्न किया, ५३% कृषि ने, २२% सेवाओं ने तथा ८% शेष कारणों से हुआ । इस योजना का उद्देश्य हमारी राष्ट्रीय आय को इस प्रकार दुगना कर देना है कि उद्योग, कृषि और सेवाओं का इस आय में पारस्परिक अनुपात ३५%, ४०% और २०% हो जाय । ऐसा होने के लिये कारखानों में ५०० प्रतिशत, कृषि में ४३०% और सेवाओं में २००% की उन्नति होनी चाहिये । निम्नलिखित तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा:—

	१९३१-३२ में आय (करोड़ रुपये)	१५ साल बाद आय का अनुमान (करोड़ रुपये)	वृद्धि का प्रतिशत
उद्योग	३७४	२,२४०	५००
कृषि	१,१६६	२,६७०	१३०
सेवाएँ	४८४	१,४५०	२००

जैसा कि इस तालिका से स्पष्ट है, कुल पूँजी की लागत के हिसाब से, औद्योगीकरण का उतना ही महत्व होगा जितना कि शेष समस्त कार्यक्रम का ।

योजना के उत्पादन क्षेत्र में, औद्योगीकरण को अन्य सब पेशों से दुगुना महत्व दिया गया है। उपयोग-सम्बन्धी कार्य-क्रम के मुकाबले में, यह शिक्षा, स्वास्थ्य और घर से ढाई गुना महत्वपूर्ण माना गया है। “आठ उद्योगपति” औद्योगीकरण द्वारा ही हमारा आर्थिक कल्याण करना चाहता है। स्वाभाविकरूप से औद्योगीकरण की जो उप-योजना उन्होंने दी है वह अच्छी और संतोष-प्रद है।

पर यहाँ एक विषय में सचेत होना आवश्यक है। इतने ऊँचे परिमाण के औद्योगीकरण की सफलता के लिये हमें प्रारम्भिक धधों एवं आर्थिक-यंत्र के सहायक धधों की काफी उन्नति करने पड़ेगी। एक आर्थिक प्रणाली के औद्योगिक तथा दूसरे विभागों में एक पारस्परिक सम्बन्ध होता है जो समय और देश के अनुकूल परिवर्तनशील है, और जो देशी एवं विदेशी व्यापार के हिसाब से एक प्रकार की आत्मनिर्भरता पैदा कर देता है। पर इस योजना के लेखकों ने इस बात पर, प्रतीत होता है, ध्यान नहीं दिया। उन्होंने शायद अपने उद्योगों की उन्नति के विषय पर ही अधिक ध्यान दिया है, और परिणाम-स्वरूप कृषि, व्यापार, तथा आर्थिक यंत्र की सहायक क्रियाओं जैसे बैंकिंग, बीमा, यातायात आदि पर बहुत कम सोचा है। यह प्रश्न केवल उद्योग बनाम कृषि अथवा शहर बनाम गाँव का नहीं। प्रत्युत यह प्रश्न इतने विशाल औद्योगीकरण की, इन सीमित दशाओं में, संभवता एवं उसके लाभों का है। क्योंकि यदि यह सच है कि उत्पादक विभाग का हर-एक भाग दूसरे पर निर्भर होता है, तो इन योजना-निर्माताओं के प्रस्ताव केवल न्याय-विहीन ही नहीं वरन् पारस्परिक-साम्बन्ध से भी शून्य हैं। हम आगे चल कर इस आर्थिक-संतुलन के प्रश्न की विस्तारपूर्वक विवेचना करेंगे।

पर यह निस्संदेह है कि उद्योगपतियों ने औद्योगिक उन्नति के लिये बहुत अच्छे, क्रियात्मक और विचारपूर्ण प्रस्ताव रखे हैं, और क्योंकि वे उन विशिष्ट व्यक्तियों की कलम से निकले हैं जिनका जीवन औद्योगीकरण में ही व्यतीत हुआ है और जिन्हें इसका अद्वितीय अनुभव है, अतः उनके इन प्रस्तावों का एक अकाट्य स्थान है जो कि उनके दूसरे प्रस्तावों का नहीं

हो सकता। उन्होंने उद्योगों को तीन विभागों में बाँटा है; (१) आधार-उद्योग; (२) उपभोग का सामान बनाने वाले उद्योग; और (३) घरेलू और छोटे पैमाने के उद्योग। ये तीन दर्जे एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न नहीं; और तीसरा दर्जा स्पष्टतया पहले दोनों दर्जों में सम्मिलित किया जा सकता है यद्यपि कि इसकी गणना मुख्यतः उपभोग की वस्तुएँ बनाने वाले उद्योगों में करनी चाहिये।

इन लेखकों ने अपनी औद्योगीकरण की योजना में इस बात का ध्यान रखा है कि आधार-उद्योगों की उन्नति का सबसे पहले काम प्रारम्भ कर दिया जाय। यह ठीक भी है क्योंकि बिना इस आवश्यक एवं सुदृढ नीव के, हम एक अच्छा, विस्तृत और दीर्घकालीन उद्योगों का भवन उठाने में सफल नहीं हो सकते। हम इन विद्वानों के इस कथन से बिलकुल सहमत हैं कि “हमारी आर्थिक योजना की सफलता के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि आधार-उद्योग, जिस पर कि देश की समस्त आर्थिक उन्नति निर्भर होती है, शीघ्र से शीघ्र स्थापित किये जाय।” आधार-उद्योगों की सूची जो उन्होंने दी है वह काफी विस्तृत है। उसमें निम्नलिखित सात बातें शामिल हैं:—

१. शक्ति—बिजली।

२. खान खोदना आदि—लोहा और स्टील, एल्युमिनियम, मैग्नेनीज़ आदि।

३. इंजीनियरिंग—हर प्रकार की मशीनें, मशीन के औजार, आदि।

४. कैमीकल—भारी कैमीकल, खादें, रंग, प्लास्टिक, दवा, आदि।

५. अन्न-शस्त्र।

६. यातायात—रेल के इंजन और डिब्बे, सामुद्रिक जहाज, मोटर, हवाई जहाज, आदि।

७. सीमेंट।

आधार-उद्योग और उपभोग-उद्योगों पर पूँजी की लागत का प्रसार इसप्रकार किया जायगा:—

	(करोड़ रुपये)			
	पहली	दूसरी	तीसरी	कुल
	पञ्चवर्षीय	पञ्चवर्षीय	पञ्चवर्षीय	जोड़
	योजना	योजना	योजना	
आधार-उद्योग	४८०	१,२००	१,८००	३,४८०
उपभोग-उद्योग	३१०	३३०	३६०	१,०००
	-----	-----	-----	-----
सब उद्योग	७९०	१,५३०	२,१६०	४,४८०

शक्ति (power) की उत्पत्ति पर लेखकों ने बहुत महत्व दिया है। उनका विश्वास ठीक है कि “हमारे छोटे और बड़े पैमाने का उद्योगों की उन्नति और कृषि तथा यातायात का विस्तार बहुत अशों में बिजली की उत्पत्ति पर निर्भर होगा।” हमारे पास इतने साधन हैं कि हम लगभग तीन करोड़ किलोबार पानी की बिजली पैदा कर सकते हैं; पर अब तक हम केवल आधे साधनों का ही उपयोग कर पाये हैं। इस ओर उन्नति के लिये काफी स्थान है, और इस योजना के अंदर इस दिशा में सङ्चित ध्यान दिया गया है। पर हमारा भय है कि ये लेखकगण शक्ति और पानी की बिजली को समानार्थक मानते हैं और वे केवल विद्युत शक्ति के विकास का ही आयोजन करते हैं। अस्तु, हम यह तो मानने को तैयार हैं कि साधारणतया ससार के प्रमुख औद्योगिक देशों में बिजली सबसे सस्ती शक्ति पाई गई है और हमारे यहाँ भी यह बात लागू हो सकती है। पर फिर भारतवर्ष की विशाल कोयले की राशि का क्या किया जायगा जो पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुई है? क्या हमारे योजना-निर्माता उसे इसी दशा में छोड़ देना चाहते हैं? सापेक्षिक लागत को सोचते हुए, यह सम्भव है कि किसी स्थान या क्षेत्र में कोयला बिजली से सस्ता बैठे। फिर कोयले का निर्यात किया जा सकता है। और कुछ नहीं तो हम जापान की मिसाल का अनुसरण कर सकते हैं जो अपने उपयोग के लिये तो बिजली पैदा करता है पर अपना कोयला चीन को बेच देता है जहाँ कोयले की

विशेष माँग है। हमारा विचार है कि हमारे कोयले का भविष्य चमक्रीला है, और इसलिये इसके अच्छे और उचित ढँग पर खोदने और बेचने की प्रणाली को, जिस दिशा में हमें कुछ न कुछ पूँजी अवश्य लगानी पड़ेगी, हमारी योजना में एक आवश्यक अंग का रूप मिलना चाहिये। हमारे पेट्रोलियम के कुए थोड़े से ही हैं; पर युद्धोपरांत मोटर, हवाई जहाज आदि के लिये पेट्रोल की माँग बहुत बढ़ जायगी। अतः इस विषय में हमारे योजना-निर्माता क्या नीति अपनावेंगे, हम यह जानना चाहेंगे। हम निश्चय इन “आठ उद्योगपतियों” के बताए हुए कारणों से, जिनकी वजह से वे आधार-उद्योगों की पहले उन्नति करना चाहते हैं, पूर्णतया सहमत हैं। ये कारण दो हैं : (१) युद्ध काल में उनकी अनुपस्थिति ने हमारे औद्योगिक विकास के मार्ग में काफी रोड़े अटकाये; और (२) उनकी उन्नति हमारी विदेशों पर निर्भरता कम कर देगी और हमारी विदेशी विनिमय की आवश्यकता घटा देगी।

लेखकों ने हमको यह भी चेतावनी दी है कि यद्यपि आधार-उद्योगों की उन्नति करना हमारे लिये नितात आवश्यक है फिर भी उतनी उन्नति इतने जोश और इतनी लगन के साथ नहीं करनी चाहिये कि उपभोग के माल की उत्पत्ति आवश्यक मात्रा में न हो पावे, क्योंकि उस दशा में हमारे देशवासियों को भी उन्हीं कठिनाइयों और कष्टों का सामना करना पड़ेगा जैसा कि रूस-वासियों को करना पड़ा था। पर हम इतना कहना आवश्यक समझते हैं कि इन लेखकों ने रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा करने और उसकी रक्षा करने की चिन्ता में बचत का संचय करने का महत्वपूर्ण प्रश्न ही भुला दिया है; और इसलिये उन्होंने जो आर्थिक उन्नति की गति निश्चय की हैं उसको काफी अंशों में बढ़ाया जा सकता है। हम इस योजना की इस नीति की कि उत्पत्ति के सामान को उपभोग के सामान के मूल्य पर उत्पन्न नहीं करना चाहिये, सराहना करते हैं, पर साथ ही साथ हम यह भी कह देना चाहते हैं कि यदि हम उपभोग के मोर्चे पर दर्शनीय परिणामों को दिखाने के लिये बचत का सचय कम कर दें अथवा पूर्णतया भुला दें तो हमारे स्थायी आर्थिक कल्याण को हानि पहुँचेगी। इस देश में हम पूँजी का सचय, रहन-सहन का

दर्जा आठ उद्योगपतियों द्वारा निश्चित लक्ष्य से घटाये बिना, काफी मात्रा में कर सकते हैं, पर इसके लिये हमें अपने प्राकृतिक एवं मानुषिक साधनों का पूरा और सर्वश्रेष्ठ उपयोग करना पड़ेगा, जैसा करने की इन योजना-निर्माताओं ने चेष्टा नहीं की है।

उपभोग के सामान उत्पन्न करने वाले उद्योगों की सूची, जिनको यह योजना स्थापित करना चाहती है, निम्नलिखित है.—

१. कपड़े—सूती, सिल्क और ऊनी।
२. काँच के कारखाने।
३. चमड़े के सामान बनाने वाले कारखाने।
४. कागज़ के कारखाने।
५. तम्बाकू के कारखाने।
६. तेल के कारखाने।

यह सूची पूर्ण नहीं प्रत्युत यह केवल उदाहरण के रूप में दी गई है। देशवासियों की आवश्यकतानुसार अन्य उद्योगों को भी स्थापित करना पड़ेगा। इन लेखकों ने हमको यह भी आश्वासन दिया है कि यद्यपि बिना आँसू के योजनात्मक उन्नति नहीं की जा सकती, फिर भी उन्होंने उन दो त्रुटियों को दूर रखने की चेष्टा की है जिनके कारण रूस-वासियों को बहुत कष्ट भोगने पड़े और जो निम्नलिखित हैं : (१) भारी-उद्योगों पर अनुचित जोर डालना और उपभोग-उद्योगों की तरफ से उदास रहना; और (२) बड़े-बड़े औद्योगिक कारखाने स्थापित करना जिनके चालू होने में कई वर्ष लगे। उपभोग का माल उत्पन्न करने वाले उद्योगों की रक्षा पारिमाणिक और वैशालिक दृष्टि-कोणों से तो होगी ही; पर जहाँ तक सम्भव हो, “उपभोक्ताओं की उपभोग के सामान-सम्बंधी रुचि की स्वतंत्रता में बाधा नहीं पड़नी चाहिये।”

भारतवर्ष ऐसे देश में, जहाँ छोटे पैमाने के उद्योग पुरातन काल से काम कर रहे हैं और जहाँ वे भारतीय एवं विदेशी कारखानों की तीव्र स्पर्धा के रहते हुए अब भी उपस्थित है, यह समस्या कि ऐसे उद्योगों को योजना में क्या स्थान मिलना चाहिये बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। आठ उद्योगपतियों

ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार कर लिया है कि “आधार-उद्योगों में तो छोटे कारखानों के लिये कोई स्थान नहीं, पर उपभोग के सामान बनाने वाले उद्योगों में उनका महत्वपूर्ण और लाभदायक स्थान है और वहाँ वे बड़े-बड़े कारखानों के काम को पूरा करने में सहयोग देते हैं।” अतः इस योजना ने छोटे-छोटे उद्योगों की रक्षा और उन्नति के लिये जो प्रस्ताव किये हैं वे इस बात का भी आश्वासन दिलाते हैं कि उपभोग के माल की पूर्ति माँग से कम नहीं होने दी जायगी। इन उद्योगों का महत्व, योजना-निर्माताओं के अनुसार, दो बातों में है। पहला तो यह कि वे बहुत से व्यक्तियों को काम देती हैं और दूसरा यह कि वे मुख्यतः योजना की प्रारम्भिक अवस्था में विदेशी पूँजी की आवश्यकता को घटा देगी जिससे कि बड़े-बड़े कारखाने स्थापित करने में सुविधा होगी। पर हमारे मत में इन युक्तियों के बूते पर यह तो कहा जा सकता है कि बड़े-बड़े कारखानों के कायम करने में छोटे-छोटे कारखाने साधन बन सकते हैं पर यह नहीं कि छोटे-छोटे कारखानों का स्थापित करना हमारा अभीष्ट उद्देश्य होना चाहिये। हमारे अंतिम योजना-चित्र में घरेलू उद्योगों को कोई स्थान मिलना चाहिये अथवा नहीं, इस प्रश्न पर आठ उद्योगपतियों ने विचार ही नहीं किया। यह बड़ा दोष है क्योंकि अल्पकालीन नीतियाँ दीर्घकालीन आदर्शों के प्रकाश में ही निश्चित की जा सकती हैं। यदि हम इस समय बिना समझे-बूझे घरेलू उद्योगों को जगह-जगह स्थापित कर दें और फिर आगे चल कर हमें उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करना पड़े तो हमारे साधनों और कुशलता की बहुत हानि होगी। घरेलू उद्योगों की उन्नति एक निश्चित योजना और नीति के अनुसार होनी चाहिये। प्रत्येक घरेलू उद्योग की स्पर्धा-सम्बन्धी शक्ति का अनुमान हमें आरम्भ में ही लगा लेना चाहिये और उनमें से केवल उन्हीं धंधों को हमें प्रोत्साहन देना चाहिये जो आगे भविष्य में यंत्र-सज्जित बड़े कारखानों का मुकाबला कर सकें। यह कहते समय हम मान लेते हैं कि अंतिम योजना-चित्र में घरेलू उद्योगों को स्थान मिलेगा। पर हम निश्चय पूर्वक यह नहीं कर सकते कि इस विषय में आठ उद्योगपतियों की क्या राय है। यदि उनकी यह सम्मति नहीं है, तब उनके इस दिशा में किये गये प्रस्तावों

का बहुत विरोध और कड़ी आलोचना की जा सकती है ।

सब बातें सोच-विचार कर हमारा मत है कि उद्योग-सम्बन्धी योजना के निर्माण करने में लेखकों को अपूर्व सफलता मिली है और उनका बनाया हुआ चित्र आकर्षक है । हमें औद्योगीकरण के विरोध में कुछ नहीं कहना है । हम औद्योगीकरण के विरोधी नहीं । वास्तव में हम जानते हैं कि भारतवर्ष की आर्थिक उन्नति का पहला उपाय है औद्योगीकरण करना । पर क्योंकि इस योजना से हमारा मतभेद मुख्यतः विभिन्न आर्थिक पेशों के पारस्परिक संतुलन या अनुमान का है, अतः हम अब कृषि की ओर ध्यान देंगे ।

अध्याय ४

उद्योग और कृषि का पारस्परिक सम्बंध

इस देश के लिये जो भी आर्थिक योजना बनाई जावेगी, उसमें उद्योगों और कृषि का पारस्परिक सम्बंध निश्चित करने का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण होगा । यह सच है कि एक बड़ी सीमा तक इन दोनों विभागों की उन्नति एक दूसरे पर निर्भर है और साथ साथ चलती है, पर बाद को दोनों का मार्ग अलग-अलग हो जाता है और उन्नति के प्राकृतिक साधन अपना प्रभाव दिखाने लगते हैं । आर्थिक साधनों के पूर्णोपयोग के नियम के अनुसार हमको उद्योग तथा कृषि दोनों के प्राकृतिक साधनों की पूरी उन्नति करनी चाहिये और किसी भी क्षेत्र के साधनों को पूरा या किसी सीमा तक बेकार नहीं रखना चाहिये ।

आठ उद्योगपति इस समस्या को सुलझाने के लिये इस पुरानी युक्ति को लेकर चलते हैं कि भारतीय आर्थिक प्रणाली-असंतुलित है जिसको ठीक कराना चाहिये । उनका कथन है कि उद्योग से कुल आय ३७४ करोड़ ६० है और कृषि से १,१६६ करोड़ ६० । इस असंतुलन को ठीक करने के लिये यदि हम उद्योग से होने वाली आय को ५०० प्रतिशत बढ़ा दें और कृषि से होने वाली आय को १३० प्रतिशत, तो इनकी आय २,२४० करोड़ रुपये और

२,६७० करोड़ रुपये हो जायगी, इस प्रकार हमारी आर्थिक प्रणाली एक संतुलित रूप ग्रहण कर लेगी !

हमारे मत में संतुलित प्रणाली का यह विचार (Concept) अद्भुत और हास्यास्पद है। इस अल्प लागत से हमारी कृषि की कितनी वास्तविक या सापेक्षिक उन्नति हो सकती है ? निश्चय हम संतुलित आर्थिक प्रणाली स्थापित करना चाहते हैं; पर कृषि को सर्वदा के लिये हास और नाश के मुँह में ढकेल कर नहीं। हम उद्योगों की उन्नति अवश्य चाहते हैं पर, उसके साथ ही साथ, हम खेती की तरक्की भी चाहते हैं। और यदि हम अपने समस्त साधनों का संपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ उपयोग करने के बाद यह पाते हैं कि हम फिर भी कृषि-प्रधान हैं तो हमको सहर्ष इस अवस्था को स्वीकृत कर लेना चाहिये क्योंकि वही हमारी आर्थिक व्यवस्था का संतुलित रूप होगा। उद्योगों की उन्नति को इस प्रकार बढ़ा देना और कृषि के विकास को इस तरह रोके रहना कि दोनों की आमदनी में एक कृत्रिम समानता आ जाय, संतुलित व्यवस्था का एक विषाक्त और हानिकारक चित्र है। इन लेखकों ने 'संतुलन' शब्द को गणित-शास्त्र के अर्थ में प्रयुक्त किया है, अर्थशास्त्र के अर्थ में नहीं ! वे भूल गये हैं कि जब अर्थशास्त्री व्यवस्था के असंतुलित होने की शिकायत करते हैं तो उनका मतलब केवल यही होता है कि खेती पर बहुत अधिक व्यक्ति अपनी जीविका के लिये निर्भर हो गये हैं, अतः इनमें से कुछ को उद्योगों में लगा देना चाहिये; उनका आशय कृषि और उद्योग की राष्ट्रीय आय से तनिक भी नहीं होता। हमारी आर्थिक व्यवस्था के औद्योगिक एवं कृषिक क्षेत्रों की उन्नति में क्या पारस्परिक सम्बन्ध होना चाहिये, इसका निर्धारण, उपभोग, उत्पत्ति और निर्यात को ध्यान में रखते हुए, अपनी प्राकृतिक और मानुषिक साधनों का संपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ उपयोग करके ही की जा सकती है। ऐसा करने के पश्चात् यदि हम देखते हैं कि हम कृषि-प्रधान बने रहेंगे तो इसी में हमारा कल्याण है। हाँ, यदि हमें जबर्दस्ती आर्थिक आत्म-निर्भरता का नियम पालन करना पड़े, तो हमें इस अवस्था में आवश्यक सुधार या परिवर्तन करने पड़ेंगे। पर सुधार करने की बात आर्थिक व्यवस्था

के बेकार अथवा आलसी रखने की बात से बिल्कुल भिन्न है। ये उद्योगपति एक मौलिक पर निरर्थक भाँति का सतुलन हमारी व्यवस्था के ताने-बाने में बुन देना चाहते हैं; और साधनों को संपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ उपयोग के नियम के विरुद्ध उपस्थित करते हैं और इसको चुनते एवं उसका तिरस्कार करते हैं। वे स्पष्टतया गलत तरीके पर चलना आरम्भ करते हैं और परिणाम स्वरूप बाद को अनेकों गलतियाँ करते हैं।*

इन लेखकों की राय में खेती की केवल १३० प्रतिशत उन्नति का प्रस्ताव करने का कारण उनका विश्वास है कि “खेतिहर वस्तुओं में भारतवर्ष का जहाँ तक सम्भव हो, अपनी जनसंख्या का पेट भरना ही उद्देश्य होना चाहिये और उसे योजना के प्रारम्भिक वर्षों में, विदेशी बाजारों को निर्यात करने की आकांक्षा नहीं करनी चाहिये” क्योंकि इन वस्तुओं के निर्यात ने “हमारे आर्थिक जीवन में अनिश्चितता का अंश समाहित कर दिया है।” इस तर्क से बात के आधार पर हमारी कृषि की उन्नति को देशी माँग की दावालो के अन्दर सीमित कर देने की बात हमारी समझ में नहीं आती। आखिर विदेशों के मूल्यों की घट-बढ़ एवं निर्यात की मात्रा के परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विरुद्ध काफी युक्ति पूर्ण नहीं समझे जा सकते, क्योंकि, तर्क के अनुसार, फिर तो हर प्रकार का व्यापार त्याज्य होगा। यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि ये योजना निर्माता औद्योगिक विकास के सम्बंध में इस आदर्श को सामने नहीं रखते। वे यह नहीं कहते कि उद्योगों की केवल उतनी ही उन्नति करें कि जो हमारी देशी माँग पूरी करने के लिये काफी हो। फिर

*मेरे इन विचारों की आलोचना के लिये देखिये P. Chandia. *Agricultural vs Industrial Development*, Commerce (Bombay), April 8, 1944 और P. C. Malhotra, *A Note on Bombay Plan*, Commerce, April 15, 1944, इसके उत्तर के लिये मेरा लेख, *Agriculture in an Economic Plan*, Commerce, June 24, 1944.

खेती की तरक्की का ही गला देशी माँग की छोटी रस्सी से क्यों घोट डाला जाय ? उनका यह कथन कि खाद्य-पदार्थों की माँग की लोच इकाई से कम है उचित नहीं, क्योंकि यद्यपि कि कुछ सोमा के बाद देश के अंदर की खाद्य-पदार्थों के लिये माग लगभग स्थिर हो जाती है, पर हमारी उपज के लिये विदेशी माँग भी तो है। फिर, हमारी खेती की सभी उपज खाद्य-पदार्थों की नहीं होती। युद्धोपरात विदेशों में खेती के माल की माँग का बढ़ना अवश्यम्भावी है। क्योंकि वे अपने देशवासियों के आहार को अधिक स्वास्थ्यपूर्ण बनाना चाहते हैं और उनकी प्रतिव्यक्ति आय बढ़ाने के लिये उद्योग धंधों की वृद्धि करना चाहते हैं जिसका अर्थ होगा कच्चेमाल की माँग बढ़ना। युद्धोपरात व्यापार के अवसर के दृष्टि-कोण से हमको चाहिये कि हम अपनी कृषि की काफी उन्नति करें जिससे कि हम अपने कृषि-सम्बन्धी लाभों का पूरा पूरा सदुपयोग कर सकें और व्यापार के अवसरों से पूर्ण लाभ उठा सकें। निःसंदेह यह उन्नति १३० प्रतिशत से अधिक की होगी।

इस योजना के अनुमान से यदि हम कृषि की १३० प्रतिशत उन्नति करें और उद्योगों की ५०० प्रतिशत तो कच्चेमाल की पूर्ति के हिसाब से आर्थिक प्रणाली के इन दोनों विभागों में पारस्परिक आत्म-निर्भरता स्थापित हो जायगी। पर इस मत की सावधानी से परीक्षा करना आवश्यक है। औद्योगिक उत्पत्ति की पंचगुनी वृद्धि करने के लिये हमें कच्चेमाल की भी पैदावार शायद पाँचगुनी बढ़ानी पड़े—यह मान कर कि हमारी आर्थिक प्रणाली के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं होगा; पर क्योंकि यह कल्पना सत्य से परे होगी, अतः हमें कच्चेमाल उत्पन्न करने वाले विभाग की कुछ कम वृद्धि करने पड़े—पर वह १३० प्रतिशत से अधिक तो अवश्य होगी। हम रुई का उदाहरण लेकर इस कथन को चरितार्थ कर सकते हैं। यह बता देना आवश्यक है कि यह केवल उदाहरण मात्र लिया गया है और उदाहरण से अन्य कोई अर्थ निकालना अनुचित होगा। मान लीजिये कि हमारे योजना-निर्माता कपड़े की पैदावार पाँचगुना बढ़ा देना चाहते हैं। तब उनको १८० लाख कपास की गाँठों की आवश्यकता पड़ेगी। पर यदि कपास की उपज १३० प्रतिशत ही बढ़ाई जाय तो

हम केवल १३५ लाख गांठे ही उत्पन्न कर सकेंगे। और वह भी तब जब कि हम मान लें कि हम रुई का निर्यात बिलकुल बंद कर देंगे और छोटे रेशे की रुई के स्थान पर, आवश्यक मात्रा में, लम्बे रेशे की रुई का उपयोग करने लगेंगे। यदि योजना-निर्माताओं के औद्योगिक एवं कृषि-सम्बन्धी उन्नति के परिमाण और मात्रा के बीच में अधिक गड़ढा छोड़ दिया, तो कच्चेमाल की माँग और पूर्ति में इस प्रकार की असमानता स्थान स्थान पर प्रकट हो सकती है; और इसका परिणाम यह होगा कि औद्योगिक उन्नति का विशाल भवन बनाना असम्भव हो जायगा।

इसके अतिरिक्त, हमारे सामने चाय, सन, आदि वस्तुओं का प्रश्न भी है जो कि मुख्यतः विदेशी बाजारों पर निर्भर हैं और जिनके लिये देशी बाजार नाम मात्र के लिये हैं। क्या देशी माँग की तंग काल-कोठरी में उनको भी ढाल दिया जायगा? विदेशी बाजारों की अनुपस्थिति में उनका क्या होगा, उपजों की योजना में फिर कितने हेर-फेर करने पड़ेंगे, और वे कहाँ तक क्रियात्मक होंगे—उपरोक्त दशा में इस प्रकार के अनेकों प्रश्न उठेंगे जिन पर प्रकाश डालना आवश्यक है पर जिन पर लेखकों ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। प्रतीत यह होता है कि ये महाशय-गण कृषि के सम्बन्ध में आत्म-निर्भरता की नीति का पालन करना चाहते हैं। पर सचमुच ऐसी आत्म-निर्भरता पूर्णतः हास्यास्पद होगी यदि इसकी शुरुआत हम अपने विदेशी बाजारों को स्वेच्छापूर्वक खो कर करें। और यह और भी अधिक हास्यास्पद होगी यदि हम इसे अपनी आर्थिक समस्या के केवल एक भाग पर ही लागू करें, अन्य भागों पर नहीं!

इस योजना के निर्माताओं ने कहा है कि इस नीति का पालन मुख्यतः योजना की प्रारम्भिक अवस्था में करना पड़ेगा। पर यदि यह भी मान लिया जाय और यह हमारा सर्वदा के लिये लागू होने वाला अथवा स्थायी आदर्श न भी हो, तब भी इस नीति के विरुद्ध काफी बातें रह जाती हैं। हम यह पूछना चाहते हैं! यह हमारा आदर्श—प्रारम्भिक अथवा आगे की अवस्था में—किस कारण से हो? एक आदर्श के रूप में, यह त्रुटिपूर्ण है। एक अतिम

ध्येय के चोले में, यह हानिकारक है। अल्पकालीन लक्ष्य की दशा में यह कटकमय है। यदि हम इस प्रस्ताव को मानकर अपने विदेशी बाजार खो बैठते हैं और युद्धोपरात बाजारों पर अधिकार करने के लिये होने वाली स्पर्द्धा में भाग नहीं लेते, तो क्या हमें कुछ समय बाद, जब हम इन बाजारों की आवश्यकता का अनुभव करेंगे, तब हमें वे फिर प्राप्त हो जावेंगे ? इसमें हमें बहुत सदेह है। यदि हम इन बाजारों को खो देंगे या युद्ध के पश्चात् उन्हें छीन-भूट कर प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करेंगे तो बाद को फिर उनकी तलाश करते समय हमें यह जानकर दुःख होगा कि अन्य देशों ने हमसे पहले ही उन पर अधिकार कर लिया है और हम फिर एक बार पीछे रह गये हैं।

इन विचारों की कमजोरी तब और भी स्पष्ट हो जाती है जब कि हम यह देखते हैं कि कच्चेमाल की अपेक्षा पक्केमाल के लिये विदेशी बाजार प्राप्त करना बहुत ज्यादा कठिन है। ससार की प्रमुख औद्योगिक जातियाँ हमारी खेती और खानों से उत्पन्न हुई वस्तुओं की अवश्य माँग करेगी, पर यदि हम अपने कारखानों में बना हुआ माल विदेशों में बेचना चाहें तो हमें अनुभव-प्राप्त और आयु-प्राप्त दिग्गजों से टक्कर लेनी पड़ेगी और नये और पिछड़े देशों की अमेद्य सरक्षण दीवारों का छेदन करना पड़ेगा, जिस कार्य में हमको सफलता की आशा नहीं, मुख्यतः प्रारम्भिक दशा में। पर यह सब होते हुए भी हमें अपने निर्यातों को आयातों से ज्यादा रखना है ताकि हम यश, कुशलता, घाटुएँ जैसे टीन, टंगस्टन, जस्ता, ताँबा, ग्रेफाइट और पेट्रोलियम का समुचित मात्रा में विदेशों से आयात कर सकें। “आठ उद्योग-पतियों” ने स्वयं कहा है कि विदेशी व्यापार से वे ६०० करोड़ रुपये प्रति वर्ष की आय की आशा रखते हैं जो कि उनकी योजना को क्रियात्मक रूप देने में प्रयुक्त होगी। पर यदि हमें खेती की उपज के निर्यात का निषेध कर दिया गया है और हम कारखानों की पैदावार विदेशों में बेचने के अयोग्य हैं, तो फिर हम अनुकूल आयात-निर्यात-अंतर किस प्रकार प्राप्त करेंगे ? हमारे मत में, इन लेखकों को चाहिये था कि वे कृषि की उपज के निर्यात की आवश्यकता को समझते और उस पर ज़र देते जिससे कि हम औद्योगीकरण के

आधार पदार्थों को आसानी और हितेच्छा से प्राप्त कर लें ।

इस प्रकार प्रतीत होता है कि उनके विचार, कारण और तर्क परीक्षा में ठहरते नहीं; और उन्होंने अपने प्रस्तावों पर जिनका अर्थ है कि कृषि को कुशलता के नीचे दर्जे पर रक्खा जाय, गभीर विचार नहीं किया है । आत्म-निर्भरता के प्रेम ने उन्हें खेती की पैदावार का निर्यात निषेध करने की ओर खींचा है और औद्योगीकरण की चिंता ने उन्हें कारखानों के प्रसार को उसी प्रकार सीमा-वद्ध करने से रोका है । पूर्ण और सर्व श्रेष्ठ उपयोग के नियम की उन्होंने केवल ऊपरी मन से, केवल जिह्वा से, ही पूजा की है; और क्रियात्मक क्षेत्र में वे कृषि-जन्य पदार्थों के निर्यात-सम्बन्धी काल्पनिक भय के शिकार बन गये हैं और इस कारण उन्होंने एक सँकरी नीति अपना ली है । देश के औद्योगीकरण को उन्होंने वैसे तो ठीक महत्व दिया है, पर कृषि की अपेक्षा उस पर ज्यादा जोर डाला है । इसका परिणाम हुआ असंतुलित और टेढ़ी-मेढ़ी योजनात्मक आर्थिक प्रणाली—जो राष्ट्रीय आय के निरर्थक शब्दों में तो अवश्य सामान्य है, पर अर्थशास्त्र के वास्तविक और सच्चे आदर्श के हिसाब से असंतुलित है । हम उद्योगपतियों से अनुरोध करते हैं कि जिस संपूर्ण उपयोग के नियम को उन्होंने सबसे बड़ा ध्येय माना है । उस नियम का वे पूर्ण पालन करें और कृषि को वे अपनी योजना में उचित स्थान दें, निराधार भय के कारण उसकी उन्नति को रोकें नहीं ।

अध्याय ५

कृषि-सम्बन्धी-उन्नति का कार्य-क्रम

स्वाभाविक रूप से, कृषि-सम्बन्धी-उन्नति का जो कुछ भी कार्य क्रम आठ उद्योगपतियों ने दिया है वह आवश्यकता और आदर्श दोनों से बहुत गिरा हुआ है । उनके हिसाब से उन्नति के दो महान कार्य—खेतों की चकबंदी एवं ऋण की अदायगी—बिना एक कौड़ी खर्च किये संपूर्ण कर लिये जायेंगे । पृथ्वी की

रक्षा पर २१० करोड़ रुपये, सिंचाई पर ४६० करोड़ रुपये और आदर्श खेतों के तैयार करने पर १६५ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे। इन सब रकमों में उन्होंने २५० करोड़ रुपये चालू पूँजी जोड़ दी है; और इस प्रकार खेती पर जो कुल रुपया खर्च होगा वह १,२४५ करोड़ हुआ। योजना-निर्माता घर बनाने में जितना रुपया खर्च करेंगे उसका यह आधा है; और उद्योग-धंधों पर जितना खर्च होगा उसका चौथाई। ये प्रस्ताव करते समय इन योजना-निर्माताओं ने अपने सम्मुख किन आदर्शों को सामने रक्खा है, यह समझना कठिन है; पर यह निस्संदेह है कि ये आदर्श देश के प्राकृतिक एवं मानुषिक साधनों का संपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ उपयोग करने से कोसों दूर हैं।

अच्छे प्रकार के कृषि के तरीकों का प्रसार करने के लिये इन लेखकों ने केवल २५० करोड़ रुपये की चलतू पूँजी का आयोजन किया है जो कि हमारे मत में बहुत कम है—मुख्यतः जब कि यह रुपया १५ वर्ष में व्यय किया जायगा और ६ लाख गाँवों में, जिसमें से हरेक में औसतन ५१७ व्यक्ति रहते हैं, बाँटा जायगा। अन्य शब्दों में चलतू पूँजी का औसत प्रति गाँव के व्यक्ति के परे आठ आने प्रति वर्ष के कुछ कम आता है। हमारी समझ में नहीं आता कि इस अकिंचन रकम से वे क्या-क्या और किस प्रकार की उन्नति करेंगे। हमें प्रतीत होता है—वल्कि हमारा विश्वास है—कि इतने धन से तो वह भी कार्यक्रम पूरा न हो सकेगा जो कि उन्होंने सामने रक्खा है—“अच्छे प्रकार के बीज, खाद, और सुधरे हुए-औजारों का प्रयोग।” जब हम देखेंगे कि हमारे किसान अच्छे घरों में रह रहे हैं, उन्हें डाक्टरों इलाज और दवा आवश्यकतानुसार मिलती है, उन्हें सिंचाई का सुख है और वे ऋण से मुक्त हैं, पर वे दकियानूषी उपायों के गुलाम हैं और बाबा आदम के जमाने के औजारों का प्रयोग कर रहे हैं—क्योंकि एक साल में आठ आना तो किसान अब भी खर्च कर लेता होगा—तो क्या वह चित्र हमें सचिकर प्रतीत होगा ?

स्थिर पूँजी के विषय में तो इन योजना-निर्माताओं के विचार और भी अधिक सकीर्ण हैं। कृषि में यंत्र के प्रयोग के लिये वे किसी भी प्रकार का

आयोजन नहीं करते। स्पष्टतया वे भारतीय कृषि को यत्र सज्जित नहीं करना चाहते। “सुधरे हुए औजारों” से बढ़ कर किसी भी प्रकार के यंत्रों का प्रयोग उनके विचार के परे है, क्योंकि उन्हें डर है कि कहीं इससे कृषि की पैदावार न बढ़ जाय, हमे उत्पत्ति का निर्यात न करना पड़े और हमारे आर्थिक जीवन में जोखिम का अंश प्रवेश न कर जाय ! हम पहले ही बता चुके हैं कि यह तर्क मिथ्या भय से अस्त और असंगत है। यह इस योजना की एक पहली है कि एक ओर तो इसके लेखक उद्योगों के यत्र-करण के लिये लालायित और व्याकुल हैं पर दूसरी ओर वे खेती के यत्र-करण पर सोचते तक नहीं। वे उद्योगों और खेती के बीच में पारस्परिक समानता आने के अर्थ में तो लाना चाहते हैं, पर कुशलता और कार्य-क्षमता के अर्थ में नहीं। हम में से बहुतों को योजना-जन्य आर्थिक प्रणाली का रेखा चित्र जिसमें एक ओर तो हमारे उद्योग प्रगतिशील, यत्र-युक्त, सुसंगठित और आधुनिक रूप में विद्यमान हों और दूसरी ओर, उनके साथ ही साथ, एक अशक्त, यत्रविहीन और अकुशल कृषि-प्रणाली सँसे गिनती हो, बहुत भद्दा और खराब मालूम होगा। यदि आर्थिक प्रणाली के विविध अंग परस्पर निर्भर हैं तो ऐसी अवस्था का साथ-साथ चलना असम्भव है। किसानों के गरीब बने रहने का परिणाम यह हो सकता है कि यत्र-युक्त उद्योगों की उत्पत्ति इतनी बढ़ जाये कि वह बिकने भी न पावे और फिर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ जावे। ऐसी दशा में औद्योगिक उन्नति केवल कृत्रिम ही होगी और उसको शीघ्र ही आर्थिक संकट के गर्त में गिरना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कृषि का यत्र-करण कई कारणों से आवश्यक है। इससे काफी मात्रा में कच्चा माल मिल सकेगा, विदेशी क्रय-शक्ति एकत्रित होगी, विदेशी व्यापार पर अधिकार होगा, और इससे महान औद्योगिक व्यापारिक, आदि, उन्नति के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये आवश्यक मात्रा में श्रमी को भी छूट मिल जायगी। फिर यदि हम यत्र-करण को एक सिद्धांत के रूप में मान लेते हैं तो इसका पालन उद्योग एवं कृषि दोनों में ही होना चाहिये। इन दोनों क्षेत्रों में यत्र-करण की गति में भिन्नता हो सकती है, यह भी सम्भव है कि एक में यत्र के समावेश

दूसरे के पहले करना पड़े; पर यंत्रकरण के सिद्धान्त का एक क्षेत्र में पालन करना और दूसरे में उसका परित्याग कर देना तर्कहीन प्रतीत होता है। अतः, कृषि का यंत्र-करण करना अवश्यम्भावी है। यदि भारतीय कृषि यंत्रों का प्रयोग नहीं करती तो वह विदेशी यंत्र-सज्जित कृषि-प्रणालियों के सामने स्पर्धा में नहीं टहर सकती और सम्भव है कि विदेशी उपज हमारे देश में ही देशी पैदावार से सस्ती बिकने लगे। संरक्षण के सहारे इस अवस्था में देशी कृषि को उठाकर अवश्य खड़ा किया जा सकता है; पर संरक्षण स्वयं अल्पकालीन सहायक मात्र है और इस सहारे को हटाने के लिये हमें अपनी कृषि-प्रणाली में यंत्रों का प्रयोग करना पड़ेगा। इस प्रकार हमें मानना पड़ता है कि यंत्र-करण ही यंत्र-करण से टकर ले सकता है। और यदि ऐसा है तो फिर हम कृषि को प्रारम्भ से ही यंत्र-युक्त क्यों न बनावे ?

जैसा ऊपर बताया गया है ये लेखक किसानों के ऋण का भुगतान कर देना चाहते हैं; और उनके बताये हुए उपाय के अनुसार यह भुगतान बिना एक कौड़ी खर्च किये हो जायगा। उनका कहना है कि युद्ध के पहले यह ऋण १,२०० करोड़ रुपये आँका जाता था; पर युद्ध के समय में किसानों को उपज के ऊँचे दाम मिले हैं और पिछले दो सालों में उनके ऋण का बहुत भुगतान हो चुका है। शेष ऋण उनके प्रस्तावित उपाय द्वारा भुगताया जा सकता है। “ऋण का भुगतान”, उन्होंने बताया है, “मुख्यतः सहकारी समितियों द्वारा होना चाहिये, जिनको इस काम के लिये ठीक तरह से संगठित करना पड़ेगा और उन्हें दीर्घकालीन साख की प्राप्ति करानी पड़ेगी। यह बता देना चाहिये कि इस काम के लिये जितने रुपये की आवश्यकता होगी वह हमारे पूँजी की लागत में शामिल नहीं किया गया है क्योंकि किसानों का ऋण दूसरे श्रेणी की बचत है और ये बचत परोक्ष अथवा उपरोक्ष रूप में सहकारी समितियों के हाथों में आजावेगी।” इस प्रकार उनका विचार है कि सहकारी समितियाँ एक हाथ में महाजनों को रुपया अदा कर देंगी और दूसरे हाथ से वापस ले लेंगी ! शायद वही में जमा खर्च करने से ही सारा काम चल जाय ! इस रीति का विस्तार-पूर्ण वर्णन अभाग्यवश नहीं

दिया गया। अन्यथा हम इन लेखकों के प्रस्ताव को ठीक तरह समझ लेते। हम स्वीकार करते हैं कि यह समझना कि यह सब इतनी आसानी से कैसे हो जायगा। हमारी शक्ति के बाहर है। यदि इन लेखकों के मत में जबर्दस्ती कमी-वेशी करके भुगतान कराने और अनिवार्य रूप से समितियों में रुपया जमा करना इसके लिये आवश्यक होगा, तो इतने स्पष्ट शब्दों में उसे नहीं कहते, और अगर वे ऐसा नहीं होना चाहते, तो वे या तो हवाई किले बनाने वाले हैं या कठिनाइयों से मुँह छिपाने वाले।

योजना का एक दूसरा महत्वपूर्ण अंग है खेती की चकवदी करना जिसको ये उद्योगपति बिना किसी व्यय के प्राप्त करना चाहते हैं। इन महा-शयों का यह विचार पूर्णतया सत्य है कि “यह सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसको हमें हल करना है” और “गहरी खेती के लिये यह सुधार नितान्त आवश्यक है।” उन्होंने इसका हल निम्नलिखित शब्दों में बताया है: “इसको हासिल करने के लिये, सहकारी खेती अन्य किसी उपाय से कम कठिनाइयाँ उपस्थित करेगा। यह किसानों से उनके खेतों का स्वामित्व बिना छीने हुए खेतों के क्षेत्र को बड़ा देता है। सहकारी खेती को शीघ्रतिशीघ्र कार्यरूप में परिणित करने के लिये यह आवश्यक है कि कुछ जबर्दस्ती बरती जाय।” चकवदी का सहकारी उपाय सबसे पहले पंजाब में काम में लाया गया और वहाँ चकवदी की औसत लागत २ रु० ५ आ० प्रति एकड़ आई। इस आधार पर समस्त जोते जाने वाली भूमि, परती एवं जोते जा सकने वाली भूमि, जिसका क्षेत्रफल ब्रिटिश भारत में ३५.४ करोड़ एकड़ है, ८२ करोड़ रुपये होगा। यदि हम इसमें भारतीय भारत का ७।१० क्षेत्रफल सम्मिलित कर लें तो यह रकम बढ़कर १३९.४ करोड़ रुपये हो जायगी। पर इस रकम के लिये इस योजना में कोई भी जगह नहीं रक्खी गई। हमारा अर्थ यह नहीं है कि जितनी लागत पंजाब में पड़ी है उतनी ही समस्त भारत में पड़ेगी, पर हमने पंजाब की चकवदी की लागत उदाहरण के रूप में ली है। लागत के अतिरिक्त केवल एक बार चकवदी कर देने से दोबारा खेतों का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन होना नहीं रोका जा सकता, पर इस समस्या पर लेखकों ने

कुछ भी विचार नहीं किया। फिर यद्यपि कि वे सहकारी-कृषि के सिद्धांत को मानते हैं और इसको कार्य रूप में परिणित करने के लिये कुछ ज़बर्दस्ती से काम लेने की भी सिफारिश करते हैं, पर उन्होंने यह कहीं भी स्पष्ट नहीं किया कि सहकारी कृषि से उनका क्या तात्पर्य है। यदि इस शब्द का समष्टि-कृषि (Collective Farming) के माने में प्रयोग करते हैं, जैसा कि कुछ विद्वानों का विचार है, तो हम बता देना आवश्यक समझते हैं कि किसानों से उनके खेतों का स्वामित्व छीन लेना कानूनी रूप में नहीं तो वास्तविक रूप में अनिवार्य है, जैसा की रूसी प्रयोग स्पष्टतया बताता है। यदि कृषि का यंत्र-करण किया गया, तब तो ऐसा होना अवश्यभावी हो जायगा।

कृषि-सुधार के कार्यक्रम की अवशेष बातों का भी सन्क्षेप में जिक्र कर दें। वे बहुत तात्त्विक स्वभाव की हैं। इस श्रेणी में भूमि के कटाव को रोकना, सिंचाई के साधनों का निर्णय करना और आदर्श खेतों को स्थापित करना आदि बातें आती हैं। भूमि के कटाव के विषय में लेखकों का यह कथन बिल्कुल सत्य है कि प्रति वर्ष बहुमूल्य ऊपरी मिट्टी बड़ी मात्रा बरसाती पानी के साथ बह जाती है और अगर ऐसा बराबर होता रहा तो लाखों एकड़ भूमि सर्वदा के लिये हमारे हाथों से जाती रहेगी। अतः उन्होंने भूमि-रक्षा के लिये २०० करोड़ रुपये के प्रारम्भिक व्यय और १० करोड़ के वार्षिक व्यय का आयोजन किया है। सिंचाई के बारे में आजकल यह दशा है कि खेती सिंचाई पर बहुत कम अशों तक आश्रित है। ब्रिटिश भारत में कुल जोते जाने वाली भूमि का क्षेत्रफल १६३८-३९ में २० करोड़ ९० लाख एकड़ था, पर उनमें से केवल ५ करोड़ ४ लाख क्षेत्रफल को ही कृत्रिम साधनों से सींचा गया था। योजना-निर्माताओं का विश्वास है कि सिंचाई के क्षेत्र में २०० प्रतिशत वृद्धि करना आवश्यक है। उन्होंने आदर्श खेतों के स्थापित करने के लिये भी आयोजन किया है। उनकी राय में “अच्छे किस्म के बीज और खाद, खेती के औजार, बैल आदि वस्तुएँ प्रदान करने के लिये और किसानों की आम-तौर पर सहायता करने के लिये” आदर्श खेतों का होना जरूरी है।

१३० प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य तक पहुँचने के लिये हमें कुल पूँजी को इस प्रकार लगाना पड़ेगा :—

	(करोड़ रुपये में)	
	प्रारम्भिक	वार्षिक
	व्यय	व्यय
भूमि कटाव की रक्षा के लिये	२००	१०
कार्यशील पूँजी	...	२५०
सिंचाई नहरें	४००	१०
कुएँ	५०	...
आदर्श खेत	१६५	१३०
	-----	-----
कुल जोड़	८४५	४००
	-----	-----

अध्याय ६

व्यापार, यातायात, बैंकिंग और बीमा सम्बन्धी योजना

योजना के दो प्रमुख भागों—कृषि और उद्योगों के अध्ययन के पश्चात्, अब हम अपने आर्थिक जीवन के व्यापारिक, धन सम्बन्धी तथा सामाजिक पहलुओं पर भी विचार करें। जैसा कि नीचे बताया जायगा, इन पहलुओं पर लेखकों ने बहुत कम ध्यान दिया है। इससे इस कथन की कि इन उद्योगपतियों ने केवल औद्योगिक निर्माण पर ही अधिकतर ध्यान दिया है और अन्य विभागों पर सापेक्षिक दृष्टि से कम विचार किया है, पुष्टि होती है।

यह योजना व्यापारिक नीति अथवा कार्यक्रम के विषय में एक शब्द भी नहीं कहती। व्यापार-योजना के निर्धारण में नीति, धन और विस्तार की महत्वपूर्ण समस्याओं पर ध्यान देना आवश्यक है। चाहे ये निर्माता अन्य किसी पहलू पर विचार न करते, पर उनका निम्नलिखित विषयों की अवहेलना करना कभी क्षम्य नहीं हो सकता : (१) विदेशी व्यापार सम्बन्धी नीति, और (२) भारत-स्थित विदेशी व्यापारिक संगठन, स्वामित्व, और अधिकार के प्रति नीति। जहाँ तक पहले विषय का प्रश्न है, ये लेखक सीधे रूप में कुछ भी नहीं कहते, और जो कुछ वे परोक्ष रूप से कहते हैं वह बहुत सावधान शब्दों में छिपा हुआ है और तर्क और विवाद से बचता हुआ चलता है। प्रतीत यह होता है कि वे विदेशी व्यापार की एक दम रोक थाम करना या उसका निषेध करना नहीं चाहते पर वे उसको कम अवश्य कर देना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त वे आत्म निर्भरता के सिद्धान्त केवल कृषि पर लागू करना चाहते हैं, उद्योगों पर नहीं। इस अवस्था के भौड़ेपन का जिक्र हम पहले ही कर चुके हैं। यदि वे चाहते हैं कि भारत में हम आत्म-निर्भरता के नम्र-स्वरूप को अपनावें, तो वे साफ-साफ शब्दों में ऐसा क्यों नहीं कहते? पर आर्थिक-प्रणाली के कृषि-सम्बन्धी विभाग की उन्नति को औद्योगिक उन्नति को स्थान देने के लिये रोक देना एक ऐसी अवस्था है कि जिसको इस देश के निवासी स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होंगे।

औद्योगिक एवं व्यापारिक संगठनों के विदेशी स्वामित्व एवं अधिकार की समस्या और भी समीप तथा महत्वपूर्ण है। इन योजना-निर्माताओं ने यह भी नहीं बताया कि वे इन संगठनों का भारतीयकरण अथवा राष्ट्रीयकरण करेंगे अथवा नहीं। यदि वे ऐसा करना चाहते हैं तो उन्हें कुछ और सम्पत्ति की आवश्यकता पड़ेगी, और इसके लिये योजना में स्थान देना आवश्यक है।

यातायात और समाचार वाहन के साधनों के विषय में यह योजना मौन नहीं है पर इसमें इस विषय पर ज्यादा सोच-विचार नहीं किया गया। उन्होंने इन साधनों की आवश्यकता और उनके महत्व को खुले शब्दों में

स्वीकार किया है, और इनकी कमी पर उन्होंने शोक भी प्रकट किया है। “भारतवर्ष का क्षेत्रफल १५,८०,००० वर्गमील होते हुए भी”, वे लिखते हैं, “यहाँ केवल ४१,००० मील रेल हैं, जब कि योरोप में (रूस को छोड़ कर) १६,६६,००० वर्गमील क्षेत्रफल में १,९०,००० मील रेल हैं। इसी प्रकार ब्रिटिश भारत में १०० वर्गमील पीछे ३५ मील लम्बी सड़के हैं। यह आक सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १०० और युनाइटेड किंगडम में २०० है।” अतएव उन्होंने रेलों को २१,००० मील तक बढ़ाने का आयोजन किया है और इसके लिये ४३४ करोड़ रुपये प्रारम्भिक व्यय और ६ करोड़ रुपये वार्षिक व्यय करने पड़ेंगे। सड़कों की वर्तमान अवस्था यह है कि यहाँ कुल सड़कें ३,००,००० मील लम्बी हैं जिनमें से केवल ७४,००० मील सड़कें पक्की हैं और शेष २,२६,००० मील कच्ची। सड़कों के विषय में उनका अपना लक्ष्य सड़कों को दुगुना कर देना है। उनके कार्यक्रम में मुख्यतः गाँव की और छोटी जिलों की सड़कें आती हैं। इस सड़क वाले कार्यक्रम का प्रारम्भिक व्यय ३०० करोड़ रुपये होगा और वार्षिक व्यय ३५ करोड़ रुपये। उन्होंने २,२६,००० मील लम्बी साधारण कच्ची सड़कों के, जिन पर गाड़ी, मोटर आदि काफी चलती हैं, पक्की करने का भी आयोजन किया है और इस काम के लिये ११३ करोड़ रुपये रखे हैं। इस प्रकार सड़कों पर कुल लागत ४१३ करोड़ रुपये आती है। स्मरण रहे कि भारत-सरकार के कंसल्टिंग इंजीनियर ने हाल ही में ४ लाख मील सड़कें बनाने के व्यय को ५५० करोड़ रुपये आँका था।

उन्होंने तटीय यातायात पर भी ध्यान दिया है। उन्होंने बतलाया है कि यातायात के इस स्वरूप की काफी आवश्यकता हुई है। भारत की विस्तृत तट-रेखा पर बिखरे हुए छोटे-छोटे प्राकृतिक बन्दरगाहों में वे सुधार करना चाहते हैं और माल भरने तथा उतारने के साधनों को प्रस्तुत करना चाहते हैं। उन्होंने लिखा है कि “बहुत समय से बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और कराची आदि को छोड़ कर कुछ ही ऐसे बन्दरगाह होंगे जहाँ यथेष्ट सामुद्रिक यातायात के साधन विद्यमान हों। हाल ही में कुछ छोटे बन्दरगाहों

की, मुख्यतः भारतीय भारत में, उन्नति की गई है, पर फिर भी ऐसे बन्दरगाहों की संख्या कि जो तटीय यातायात में भाग ले सकें बहुत कम है। यदि भविष्य में हमें तटीय यातायात को देश की यातायात-प्रणाली में उचित स्थान देना है, तो छोटे-छोटे जहाजों के उपयुक्त अनेको बन्दरगाहों को बनाना आवश्यक है। इस काम के लिये लगभग ५० करोड़ रुपये लगाने पड़ेंगे। इस प्रतिशत की दर से, वार्षिक व्यय ५ करोड़ रुपये आवेगा।”

इन लेखकों के सामुद्रिक यातायात सम्बन्धी विचार स्पष्टतया बहुत सकीर्ण हैं क्योंकि वे तटीय यातायात के आगे कुछ सोचते ही नहीं। देशवासियों की बहुत समय से यह अकांक्षा रही है कि उनके माल लाने और ले जाने के लिये स्वदेशी जहाज हों और विदेशी जहाजों पर उनकी निर्भरता यदि लोप न हो तो कम तो अवश्य हो जाय। इस देश में सामुद्रिक यातायात सम्बन्धी साधन और लाभ प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं और इसका विदेशी व्यापार भी बहुत काफी है, और यदि ये योजना-निर्माता आत्म-निर्भरता की संकीर्ण गली में ही चक्कर न काटते रहे तो इसका कई गुना बढ़ना भी अवश्यभावी है। वर्तमान समय में हमें विदेशी जहाजों को प्रति वर्ष बहुत सा रुपया देना पड़ता है और देशी जहाजों की उन्नति विदेशी जहाजों ने अन्यायपूर्ण स्पर्धा के बल पर रोक रक्खी है। इन सब बातों का यही निष्कर्ष है कि इस देश के लिये बनाई जाने वाली प्रत्येक योजना में भारतीय सामुद्रिक यातायात की पूरी उन्नति के लिये आयोजन होना नितान्त आवश्यक है। कोई भी योजना जो इस प्रकार का आयोजन नहीं करती इस देश के निवासियों के आदर्श तक नहीं पहुँच सकती और उनको सतुष्ट नहीं कर सकती।

यातायात योजना के इस चित्र में एक और अभाव हवाई यातायात का है। इस कथन का कि हवाई यातायात का निकट भविष्य में बहुत ऊँचा स्थान होगा, शायद ही कोई व्यक्ति खंडन करने का साहस करे। अब तक हमारे देश में हवाई यातायात की उन्नति बहुत थोड़ी—केवल नाम मात्र को—हुई है। पर युद्ध ने एक ऐसी नई स्थिति उत्पन्न कर दी है कि

इस लापरवाही को जारी रखना और विदेशियों को इस देश में हवाई याता-यात के साधनों को शोषित करने देना हमारे हितों के विरुद्ध होगा। आज कल नये नये हवाई जहाज ईजाद किये जा रहे हैं जिनकी गति प्रबल, सामान और यात्री ले जाने की सामर्थ्य अधिक और खराब मौसम का सामना करने की शक्ति ज्यादा है। पाइलट, ग्राउन्ड इंजीनियर तथा अन्य कुशल और विशिष्ट व्यक्ति, इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये, सहस्रों की संख्या में तैयार किये जा रहे हैं। बहुत से स्थानों पर नये हवाई अड्डे, होटल तथा अन्य इसी प्रकार की चीजें बनाई जा चुकी हैं। नये वायु मार्ग खोले जा चुके हैं। इस प्रकार अब ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई है कि इसमें गतिवान यातायात के इस साधन की उन्नति करना स्वाभाविक और तर्क पूर्ण ही नहीं बरन आसान भी हो गया है। इसके अतिरिक्त संसार के समस्त देश हवाई यातायात के भविष्य के विषय में चिंतित हैं। चिंता की खास बात है एक सतोषप्रद आधार को खोज निकालना जिस पर कि एक देश के जहाज सारे संसार में चक्कर लगा सकें। एटलांटिक महासागर के दोनों ओर का वातावरण “वायु की स्वतंत्रता” में शब्द से गूँज सा जा रहा है, जो कि भारत ऐसे देश के हितों को अवश्य ही हानि पहुँचावेगा। भारत सरकार ने कुछ काल हुए हवाई यातायात की उन्नति के लिये एक योजना तैयार कराई थी जिसे कि साधारण और नम्र कहा गया है। इसके कार्यक्रम के अनुसार, दस साल के अन्दर देश में १११ हवाई अड्डों और उतरने के स्थानों का एक जाल बिछा दिया जायगा और इसमें १५½ करोड़ रुपये व्यय होंगे। ६१ हवाई अड्डे तो मौजूद हैं ही; श्रुतः केवल २४ नये अड्डे बनवाने पड़ेंगे। ७८ अड्डों को रात में उड़ने को सुविधाओं और साधनों से सुसज्जित किया जायगा। हर दर्जे के विशिष्ट और कुशल व्यक्तियों की संख्या ७०,००० पर आँकी गई है। यह अचम्भे की बात है कि भारत सरकार तक, जिस पर सुस्ती और वैमनस्यता का दोषारोपण किया जाता है, जिस हवाई यातायात की टेढ़ी और महत्वपूर्ण समस्या की अवहेलना न कर सकी, उसका उद्योग-पतियों की योजना ने जिक्र तक नहीं किया !

सदेश-वाहन के साधनों की भी इसी प्रकार, इस योजना में, अवहेलना की गई है। यदि हमारे गाँवों और शहरों में कृषि और उद्योग-सम्बन्धी उन्नति काफी हुई तो हमें डाकखाने, तारघर, सेविंग्स बैंक, रेडियो, बेतार का तार आदि स्थान स्थान पर स्थापित करने पड़ेंगे और दूसरे सदेश-वाहन व धन-वाहन के साधनों की उन्नति करनी पड़ेगी, और इसके लिये बहुत सा रुपया खर्च करना पड़ेगा। पर इस ओर उद्योगपतियों ने न तो कोई ध्यान दिया है और न कोई आयोजन ही किया है।

यातायात के अतिरिक्त, आर्थिक उन्नति के धन-सम्बन्धी साधनों की ओर भी इन योजना-निर्माताओं ने कोई भी ध्यान नहीं दिया। इनमें से बैंकिंग और बीमा प्रमुख हैं। युद्धोपरात उद्योगों, कृषि और व्यापार की उन्नति प्रति-व्यक्ति आय की वृद्धि, शिक्षा का प्रसार और बीमा-विक्रय की कुशलता में तरक्की बीमा की माँग को इतना बढ़ा देगी कि उसे पूरा करने के लिये हमें दर्जनों कम्पनियों चलानी पड़ेगी। भारतीय बीमा कम्पनियों की यह भी शिकायत है कि विदेशी कम्पनियों ने जिनके अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध हैं और महान पूँजी है, भारतवर्ष में अपना काम खूब फैला रखा है, और देशी कम्पनियों को, खास कर आग-बीमा और सामुद्रिक बीमा के क्षेत्रों में, उनकी तीव्र स्पर्धा का मुकाबला करना पड़ता है और हार माननी पड़ती है। हमें हर योजना में इस बात का आयोजन करना पड़ेगा कि बड़ी-बड़ी भारतीय बीमा कम्पनियाँ स्थापित की जावें कि विदेशी कम्पनियों से बीमा के हर क्षेत्र में सफलता पूर्वक टक्कर ले सकें और बीमा की बढ़ती हुई माँग को संतुष्ट कर सकें। मुख्यतः विदेशी विनिमय बैंक और विदेशी सामुद्रिक बीमा कम्पनियों के पारस्परिक सम्बन्ध और समझौते को हमें अवश्य तोड़ना पड़ेगा। यह बात सब मानते हैं कि हमारे देश में आज तक कोई भी देशी विनिमय बैंक केवल इसलिये स्थापित न हो सका कि विदेशी बैंकों ने उसका गला काटने में और उसका सन्तानाश करने में हरेक साधन का प्रयोग किया। देश के अंदर भी व्यापारिक बैंकिंग के क्षेत्र में भी विदेशी बैंकों ने एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। युद्ध के बाद हमारे सामने समस्या इन सब विदेशी बैंकों से

टक्कर लेने की तो होगी ही, पर आर्थिक उन्नति के साथ जो बैंकिंग की माँग बढ़ेगी, उसको पूरा करने के लिये बहुत से नये बैंक स्थापित करने पड़ेंगे। गाँवों तक में बैंक और बीमा कम्पनियाँ स्थापित करने के लिये और उनकी विभिन्न प्रकार की किस्में क्रायम करने के लिये हमें करोड़ों रुपये खर्च करने पड़ेंगे। पर इन सब महत्वपूर्ण और आवश्यक बातों के लिये इन उद्योगपतियों ने रूपों का बिल्कुल भी प्रबन्ध नहीं किया, जो कि उनकी योजना का एक बड़ा दोष है।

अध्याय ७

कुशल व्यक्तियों का प्रश्न

भारत ऐसी अवस्था में स्थित देश के लिये जो भी योजना तैयार की जायगी उसमें एक महत्वपूर्ण बात यह देखी जायगी कि यह कुशल व्यक्तियों के अभाव को दूर करने का क्या आयोजन करती है। उद्योगों की उन्नति एवं कृषि का यत्न-करण और विकास कुशल व्यक्तियों की माँग को अपूर्व मात्रा में बढ़ा देगा। हमें शारीरिक व मस्तिष्क-सम्बन्धी कार्य करने वाले, दोनों की ही आवश्यकता होगी। कक्षाओं में पढ़ने वाले या कमरों में अध्ययन करने वालों की तथा कारखानों में काम सीखने वालों एवं व्यक्तिगत अनुभव पर भरोसा रखने वालों की हमें एक समान आवश्यकता पड़ेगी। शिक्षित शारीरिक कार्य करने वाले मजदूरों की उपस्थिति एक योजना की सफलता के लिये नितान्त आवश्यक है क्योंकि बिना इस प्रकार की पूर्ति के हम यत्न-सज्जित मिलों और कारखानों को चालू नहीं कर पावेंगे और योजना के प्रमुख अंगों को कार्य-रूप में परिणित नहीं कर सकेंगे। हमारी औद्योगिक उन्नति पर कुशल श्रमी के अभाव ने जो सीमाएँ बाँध दी हैं और कार्यक्षमता वर्धन के मार्ग में जो कठिनाइयाँ उपस्थित कर दी हैं, उन्हें हमें हटाना होगा; और एक आर्थिक

योजना की छत्र-छाया में इस कमी को दूर करने के लिये हमें पूरी कोशिश के साथ काम करना होगा। इस दिशा में सरकार एवं उद्योगपतियों को बहुत काम करना पड़ेगा, और उद्योगों के मानुषिक अंश में बहुत सी पूँजी लगानी पड़ेगी। पर हमें दुख के साथ कहना पड़ता है कि उद्योगपतियों की योजना साधारण श्रमी को चतुर श्रमी में परिणित करने की ओर ध्यान नहीं देती, और ऐसी हालत में उनका अभीष्ट मात्रा का औद्योगीकरण असम्भव हो जायगा।

शारीरिक कार्य करने वालों के अतिरिक्त बहुत कुशल और विशिष्ट व्यक्तियों की भी कमी हमें पग पग पर खटकेगी। इंजीनियर, डाक्टर, अध्यापक, बीमा-व्यवसायी, बैंकिंग में कुशल व्यक्ति, शासक, प्रबन्धक आदि सब इसी श्रेणी में आते हैं। इन व्यक्तियों की देश में बहुत कमी है। भारतवर्ष, जो भूखे रहने, बीमारियों के शिकार होने और ससार के सबसे ऊँची मृत्यु दर देने के लिये प्रसिद्ध है, केवल ४२,००० डाक्टर और ४,००० नर्सों को अब तक तैयार कर पाया है। यदि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ऐसा देश ४०० या ५०० से अधिक शहर व घर निर्माताओं के रखने की शेखी नहीं बघार सकता तो हमारे देश में ४० या ५० भी ऐसे कुशल शहर व घर निर्माता नहीं निकलेगे। हमारे यहाँ बैंकिंग, बीमा और यातायात के क्षेत्रों में निपुण व्यक्ति बहुत ही कम हैं। यदि यह सच है कि हाल में ही हमारे देश में इतना बैंकिंग-विकास होने का प्रमुख कारण कुशल और शिक्षित व्यक्तियों की उपस्थिति है जो कि बैंकों में कुछ काल काम कर चुके हों और उसके भेदों और रीतियों से भली भाँति परिचित हो चुके हों, तो तर्क से अन्य क्षेत्रों में भी व्यापारिक उन्नति बिना शिक्षित एवं कुशल व्यक्तियों की उपस्थिति के नहीं हो सकती। अभाग्यवश हम बहुत अरसे से विदेशी प्रबन्ध एवं शासन सम्बन्धी कुशलता पर निर्भर रहते आये हैं। हमारे बड़े बड़े उद्योग-धंधे जैसे कपड़े के कारखाने, जूट के कारखाने, लोहे के कारखाने आदि विदेशी मैनेजर और विशिष्ट व्यक्तियों के बल पर खड़े हुए हैं। यह हमारी कमजोरी और औद्योगिक अकुशलता का एक महत्वपूर्ण कारण है। विदेशियों को भारतवर्ष की जलवायु माफिक नहीं आती। उन्हें काफी रुपया प्रारम्भ में ही दे देना पड़ता है

जिसका परिणाम यह होता है कि उन्हें नौकरी से अलग करना कठिन हो जाता और वे कभी कभी आज्ञा के विरुद्ध भी काम करने लगते हैं। उन्हें भारतवर्ष के मजदूरों से काम लेने का अनुभव नहीं होता और वे उन्हें केवल सुस्त और अकुशल कमजोर मराघिल्ले मालूम पड़ते हैं। युद्ध ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि विदेशी कुशलता पर ज्यादा निर्भर रहना भय का कारण हो सकता है, खासकर राष्ट्रीय आपत्ति काल में। शिक्षा-सम्बन्धी योजना हमें इस प्रकार की बनानी पड़ेगी जिसके बूते पर हम कुशलहीनता और अस्थिरता की जड़ ही काट दे, और अपनी आवश्यकतानुसार देशी कुशलता की गति और मजबूती के साथ उन्नति कर लें। पर यदि ये आठ योजना निर्माता इस पहलू से परिचित हैं, तो उन्होंने इसे कार्य रूप में परिणित करने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने इस प्रकार की शिक्षा का आयोजन अपनी बताई हुई सैद्धान्तिक अथवा क्रियात्मक शिक्षा की किसी भी श्रेणी में नहीं किया।

इन लेखकों ने शिक्षा की एक नई शाखा के विषय में भी एक शब्द नहीं कहा जिसको प्रिंसटन विश्वविद्यालय (संयुक्त राष्ट्र) ने कार्य रूप में परिणित कर दिया है और जिस पर विदेश काफी ध्यान दे रहे हैं। यह है योजना-विषयक शिक्षा। यदि उन व्यक्तियों को जो कि योजना द्वारा चित्रित कार्यक्रम को चलायेंगे, उसे पूरा करेंगे और उसे एक वास्तविक रूप देंगे, पूरी योजना से परिचय करा दिया जाय और उन्हें यज्ञ-प्रणाली को समझा दिया जाय जिसके वे एक अंग है, तो निस्संदेह वे अपने कर्तव्य का अधिक कुशलता और सफलता के साथ पालन करेंगे। इस आधार को लेकर प्रिंसटन ने योजना के विद्यार्थियों का तीन श्रेणियों में विभाजन किया है। (१) योजना—विशारद (२) योजना-निर्माता, और (३) योजना-शासक और तीनों के पाठ्यक्रम व शिक्षा के विषय भी अलग-अलग हैं। इस बात को अब माना जाने लगा है कि इस प्रकार की शिक्षा एक योजना की सफलता के लिये नितान्त आवश्यक है। पर हमारे उद्योगपतियों ने अपनी योजना में इस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। देश में भी इस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया जा रहा है; और हमारे विश्वविद्यालयों ने ही इस दिशा में शिक्षा का कुछ प्रबंध

संस्था	प्रस्तावित संख्या	प्रत्येक की सामर्थ्य	प्रति अस्पताल संख्या		कुल संख्या	
			डाक्टरों की	नर्सों की	डाक्टरों की	नर्सों की
गाँव के दवा घर	६,६०,०००	१	२	६,६०,०००	१२,२०,०००
शहरी—						
अस्पताल	५,५००	४० खाटे	२*	४*	११ ०००	२२,०००
जच्चा-घर	२,७५०	३० ”	२*	४*	५,५००	११,०००
विशिष्ट चिकित्सालय	१५,००० खाटे (कुल)	२* (प्रति ५० खाटे)	४* (प्रति ५० खाटे)	६,०००	१२,०००
					६,८२,५००	१३,६७,०००

(लेखकों ने अंक नहीं दिये। हमारे अनुमान हैं।)

किया है। हाँ, प्रयाग विश्वविद्यालय ने अवश्य एम० ए० श्रेणी में “योजना” नामक एक विषय अवश्य जोड़ा है और उसमें शिक्षा भी दी जा रही है। हो सकता है कि उद्योगपतियों ने “विश्वविद्यालय की शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा एवं अनुसंधान” के दर्जे में इस शिक्षा को भी सम्मिलित कर लिया हो; पर इस दर्जे की शिक्षा पर व्यय करने के लिये उन्होंने जितने धन का आयोजन किया है वह बहुत ही कम है।

शिक्षा पर कुल मिला कर ४६० करोड़ रुपया खर्च किया जायगा जिसमें प्रारम्भिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा एवं अन्वेषण सभी शामिल हैं। उन्होंने विश्वविद्यालय की शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा और अन्वेषण पर राष्ट्रीय आय के ५/१००० वे भाग के व्यय करने का प्रस्ताव किया है और अनुमान लगाया है कि योजना के प्रथम वर्ष में यह खर्चा १० करोड़ रुपये और अंतिम वर्ष में ३० करोड़ रुपये होगा और औसत २० करोड़ रुपये वार्षिक का आकर पड़ेगा। अन्य शब्दों में, योजना के १५ वर्ष में कुल ३०० करोड़ इस विषय पर व्यय किया जायगा। यह रुपया बहुत ही कम है और लेखकों के दूसरे प्रस्तावों को कार्यशील बनाने में काफी नहीं होगा। डाक्टरों की शिक्षा को ही ले लीजिये। आजकल हमारे देश में ४२००० डाक्टर और ४,५०० नर्स हैं जिनके बूते पर लेखकों द्वारा चित्रित महान स्वास्थ्य-वर्धक कार्यक्रम पूरा करना असम्भव है। योजना को सफल बनाने के लिये हमें कितने डाक्टर और नर्स चाहिये, उसका अनुमान पिछले पृष्ठ पर लगाया गया है। इसकी तालिका से स्पष्ट है कि योजना के स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये हमें ६.८ लाख डाक्टरों और १३.७ लाख नर्सों की आवश्यकता पड़ेगी। १९३६ में एक डाक्टर की शिक्षा देने का वार्षिक व्यय भारतवर्ष में औसतन ८१५) वार्षिक आया था। इस आधार पर ६,८२,५०० विद्यार्थियों को डाक्टरी शिक्षा पर पाँच साल तक प्रति विद्यार्थी के हिसाब से ३०५,६६,८७,५००) खर्च करने पड़ेगे। यदि हम हममें १३.७ लाख नर्सों के शिक्षा देने का व्यय यह मान कर कि प्रत्येक नर्स की शिक्षा* में केवल १००) खर्च होगा, अर्थात् कुल रुपया १३.६ करोड़ लगाना पड़ेगा, जोड़ दे तो कुल रकम

३२० करोड़ रुपये आयेगी। अतः उद्योगपतियों ने विश्वविद्यालय की शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान के लिये जो २०० करोड़ रुपये का आयोजन किया है वह समस्त कार्यक्रम के एक छोटे से भाग को भी सफल नहीं बना सकता।

स्पष्टतया लेखकों ने शिक्षित व्यक्तियों की समस्या पर बहुत कम ध्यान दिया है और उन्हें अपनी योजना को सन्तोषप्रद बनाने के लिए काफी सुधार करने पड़ेंगे। हमको खुशी है कि श्री घनश्यामदास विड़ला के फेडरेशन ऑव इंडियन चैम्बर्स ऑव कॉमर्स एन्ड इन्डस्ट्री की १९४४ की सालाना बैठक के व्याख्यान से प्रतीत होता है कि उन्हें इस समस्या का पूरा पूरा ध्यान है। उन्होंने कहा कि “योजना के सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई आदमियों की कमी है। भारतवर्ष में हमारे पास काफी आदमी नहीं हैं जोकि इस प्रकार के कार्यों को कर सकें।” श्री विड़ला के इस कथन से हम पूर्णतया सहमत हैं और हमें आशा है कि वे अपने साथियों पर अपना प्रभाव डालेंगे और योजना में ऐसे सुधार करावेंगे कि जिससे सब प्रकार की शिक्षा के लिए काफी धन का प्रबन्ध हो।

अध्याय ८

योजना का धन-सम्बन्धी पहलू

इस योजना की सबसे महत्वपूर्ण और मजबूत बात यह है कि इसमें बताये गये धन-संबंधी प्रस्ताव बहुत अच्छे और क्रियात्मक हैं। जैसा हम बता चुके हैं, इस योजना के प्रकाशित होने के पूर्व, सरकार, अर्थशास्त्री और जन-साधारण के सम्मुख एक बड़ा प्रश्न यह था कि एक विशाल आर्थिक उन्नति के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये धन कहाँ से आवेगा। इस प्रश्न का कोई भी हल समझ में न आता था। देश और उसके निवासियों की निर्धनता,

राष्ट्र-निर्माण के कामों की धन के नितान्त अभाव के कारण अवहेलना, हाल में होने वाली थोड़ी बहुत आर्थिक उन्नति के मार्ग में रोड़े अटकाने वाली कठिनाइयाँ, एक विदेशी सरकार के उद्देश्यों के विषय में बहुत काल से चले आने वाला संदेह—इन सब ने मिलकर एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया था कि जिसमें युद्धोपरात पुनर्निर्माण एक निरर्थक वाक्य प्रतीत होने लगा था। क्योंकि आवश्यक धन प्राप्त करने की असम्भवता एक बड़ी बाधा थी और इसी की वृजह से योजनात्मक उन्नति को एक सुदूर भविष्य की वस्तु समझा जाने लगा था। पर “आठ उद्योगपतियों ने योजना के लिये धन प्राप्त करने के वास्तविक, क्रियात्मक और अच्छे मार्ग बताये हैं। यह सच है कि इस योजना के धन-सम्बन्धी पहलू की कड़ी आलोचना हुई है, पर असल बात यह है कि ये प्रस्ताव इतने नये और क्रांतिकारी हैं कि देशवासी इनको देख कर भौचक्के से रह गये हैं, और यह अवस्था जब तक समाप्त नहीं हो जाती तब तक धन-सम्बन्धी प्रस्तावों का वास्तविक मूल्य पहिचानने में कठिनाई होगी।

इन लेखकों ने धन के मार्गों को दो विभागों में बाँटा है : भीतरी और बाहरी। बाहरी धन से उनका आशय उस धन से है जो हमें विदेशों को माल अथवा सेवाओं के आयात करने के बदले में देना पड़ेगा। इसमें निम्न-लिखित वस्तुएँ सम्मिलित हैं। (१) देश का गड़ा हुआ धन मुख्यतः सोना; (२) हमारा युनाइटेड किंगडम पर उधार रुपया अर्थात् स्टर्लिंग पैसे जो रिज़र्व बैंक के पास हैं; (३) हमारे निर्यात-आयात का अपनी तरफ वाला भेद; और (४) विदेशी ऋण। भीतरी धन से उस धन से आशय है जो कि हमारे देश में स्थित आर्थिक साधनों की उन्नति में लगाया जायगा। इसमें निम्नलिखित चीजें सम्मिलित हैं; (१) देशनिवासियों की बचत; (२) “बनाया गया” धन। स्पष्टतया बाहरी और भीतरी धन के मध्य में जो लकीर खींची गई है उसका क्रियात्मक दृष्टि से बराबर और सर्वदा पालन होना असम्भव है; और न इस अंतर्भेद की कोई आवश्यकता ही प्रतीत होती है। पर इससे इस योजना में बताये गये प्रस्तावों की मजबूती या श्रेष्ठता में कुछ अंतर नहीं होता।

देश में गढ़े हुए धन से लेखकों का आशय मुख्यतः सोने से है। सोने के बड़ी मात्रा में यहाँ में निर्यात होने के बाद भी अनुमान लगाया गया था कि हमारे देश में लगभग १,००० करोड़ रुपये का सोना बाकी है। इसमें से ये लेखक केवल ३०० करोड़ रुपया योजना की सफलता के लिये लेना चाहते हैं। ३०० करोड़ रुपये के मूल्य का बेकार सोना उत्पादक कार्यों में लगाने के प्रस्ताव का हम शुभागमन करते हैं। पर जब वे यह कहते हैं कि उन्हें इस तरफ से “३०० करोड़ रुपये से अधिक का सोना नहीं मिल सकता”, तब हमें भय है कि या तो उन्हें राष्ट्रीय और विश्वासपूर्ण सरकार की १००% सोना बाहर निकलवा लेने की शक्ति में संदेह है या वे यह सोचते हैं कि सोना एकत्रित किये रहना युद्ध के समय लाभदायक होगा और या वे कागजी चलन के पीछे आज-कल की भाँति स्वर्ण-कोष रखने की बात सोचें बैठे हैं? हमारा विचार है कि इन योजना-निर्माताओं के मस्तिष्क में जिस प्रकार की अधिकारित आर्थिक प्रणाली का चित्र है उसमें मुख्यतः जब कि उसे कुशलता और दृढ़ता पूर्वक एक जन-साधारण की सरकार जिसमें देश निवासियों को पूर्ण विश्वास होगा चलायेगी, सोने का चलन-सम्बन्धी प्रयोग न्यूनतम मात्रा तक घटाया जा सकता है। हमारी समस्त स्वर्ण-राशि—एक आवश्यक मात्रा को आभूषण एवं औद्योगिक प्रयोगों के लिये छोड़कर—हमारी सरकार बाहर निकलवाकर अपने अधिकार में कर सकती है। स्मरण रहे कि यदि किसी समय हमें सोने की आवश्यकता पड़ी तो हम उसे खुले बाजार में खरीद सकते हैं? यह एक और वजह है जिसके कारण हमारे लिये इतनी अल्प-सी सम्पत्ति को कार्यशील पूँजी में परिणित कर लेना, जो कि आगे भी धन उत्पन्न करे और आदमियों को अधिक धनवान बनाये, लाभदायक होने के साथ साथ खतरे से भी खाली है। हमारा व्यक्तिगत विचार है एक वास्तविक राष्ट्रीय सरकार को आँके गये रुपयों से दुगने रुपये का सोना एकत्रित कर लेना कठिन नहीं होगा और इस अधिक प्राप्त किये गये धन को योजना के छूटे हुये कार्यक्रम में लगाना अभीष्ट होगा।

धन का दूसरा साधन है स्टर्लिंग पर्वे जो रिजर्व बैंक में तेजी के साथ

इकट्ठे होते चले जा रहे हैं। जब यह योजना प्रकाशित हुई थी तब ये पच्चे लगभग ८०० करोड़ रुपयों के बराबर एकत्रित हो चुके थे और इन लेखकों ने लिखा था कि “यदि युद्ध एक या दो वर्ष जारी रहे और ब्रिटिश सरकार हमारे देश में से माल उसी पैमाने पर खरीदती रहे जैसा कि वह अब तक करती आई है, तो यह रकम बढ़ कर १,००० करोड़ रुपये तक पहुँच जायगी।” उनका यह कथन सच हो चुका है और ये पच्चे इस रकम तक पहुँच चुके हैं। पर एक टेढ़ा प्रश्न यह है; क्या यह धन-राशि हमें योजना के प्रारम्भ में यत्र आदि वस्तुओं के आयात करने के लिये दे दी जावेगी? या, क्या यह हमें कुल आवश्यक धन के १० प्रतिशत भाग तक मिल सकेगी? इसमें बहुत सदेह है। पहली बात तो यह है कि इस बात की बहुत सम्भावना है कि जैसे पहली बड़ी लड़ाई के बाद हमें ब्रिटेन के युद्ध-व्यय और युद्धोपरात-पुनर्निर्माण की ओर रुपया देना पड़ा उसी प्रकार इस युद्ध के बाद भी देना पड़े। मुख्यतः जापानियों के हमारे देश पर आक्रमणों के भय ने इस सम्भावना को और भी अधिक बढ़ा दिया है। लंदन के आर्थिक पत्र “इकानामिस्ट”, लार्ड केन्स तथा अन्य ब्रिटिश अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ ने कुछ काल से यह माँग शुरू कर दी है कि इंडो-ब्रिटिश राजीनामे की शर्तों में इस प्रकार के परिवर्तन कर देने चाहिये कि स्टर्लिंग ऋण का कुछ भाग इसी प्रकार समस्त हो जाये। ब्रैटन कुड़रू में होने वाली अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा समिति ने भारतवर्ष के इस रुपये के विषय में बहस करने से ही इन्कार कर दिया।^१ इस प्रकार स्टर्लिंग पच्चे के मिलने में अब बहुत सदेह हो चला है। ब्रिटेन को रुपया देने के बाद जो कुछ भी धन बचेगा उसका कुछ भाग स्टर्लिंग का मूल्य गिर

देखिये इस विषय में मेरे लेख : *Fresh Dangers & sterling Assets*, *Financial News (Bombay)*, June 17, 1944; *Sterling Repayment or Repudiation?*, *Hindustan (Lucknow)*, June 30, 1944; *The British care for sterling Repudiation Examined mysindia.* (Bangalore), June 24, 1944.

जाने के कारण बर्बाद हो जायगा। फिर हम स्टर्लिंग पच्चों के बदले में यंत्र आदि उत्पादक सामान ले सकेंगे, इसमें बहुत संदेह है क्योंकि ब्रिटेन ने हमारे देश में उपभोग के सामान का निर्यात करना आरम्भ कर दिया है जो कि युद्धोपरांत तेजी पकड़ेगा। इससे हमारे स्टर्लिंग धन का अपव्यय ही नहीं होगा वरन् युद्ध के समय में जो कुछ भी औद्योगिक उन्नति हुई है उसको भी धक्का लगेगा। अतः जो कुछ भी स्टर्लिंग की रकम बचेगी, वह संसार के अधि-करित उत्पादक माल के बाजारों में क्रय-शक्तिप्रदर्शित नहीं कर सकती क्योंकि हमको इस समय उत्पादक माल मिलेंगे ही नहीं; और युद्ध कालीन आर्थिक समस्याओं को शांतिकालीन आधार पर वापस आने में समय लगेगा। युद्धोपरांत उत्पादक माल की माँग बहुत बढ़ जायगी—युद्ध के समय में नष्ट-भ्रष्ट माल-जायदाद को दोबारा बनाने के लिये, घिसी हुई मशीनें, इमारतें आदि बनाने के लिये, और युद्धोपरांत के आदर्शों के अनुकूल उत्पत्ति में वृद्धि करने के लिये। इस माँग की वृद्धि प्रायः प्रत्येक देश में होगी, मुख्यतः ऐसे देशों में जो उत्पादक माल के बनाने के लिये प्रसिद्ध हैं। युद्ध के बाद कुछ समय तक उत्पादक सामान की माँग का पूर्ति से अधिक रहना अवश्यम्भावी है; और जब तक यह अंतर विद्यमान रहता है तब तक हमें उत्पादक सामान खास राजीनामाओं द्वारा ही मिल सकते हैं। यही कारण है कि बहुत से विदेश जिन्हें ऐसे माल की आवश्यकता है या होगी, अभी में बनाने वाले देशों से ऐसे माल को पहले उन्हें देने का राजीनामा कर रहे हैं। वास्तव में ऐसे माल को हथियाने के लिये एक भगदड़ मची हुई है जिसमें भारतवर्ष कोई भाग नहीं ले रहा है और ऐसी दशा में उसे ब्रिटेन का मुहताज रहना होगा जो स्वयं ऐसी दशा में होगा कि भारतवर्ष को कृतज्ञ नहीं कर सकता। अंग्रेजी साहूकारों ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि वे स्टर्लिंग ऋण की अदायगी केवल उसी रूप में करेंगे जो कि ब्रिटेन की युद्धोपरांत पुनर्निर्माण की नीति के अनुकूल हो। ऐसी दशा में यह बहुत सम्भव है कि हमें उत्पादक माल का मिलना तब तक के लिये रुक जाय जब तक कि संसार में ऐसे सामान का बाहुल्य न हो जाय और

औद्योगीकरण का स्वर्ण अवसर न निकल जाय ।^१

इन सब बातों को देखते हुए लेखकों का यह मान लेना कि उन्हें स्टर्लिंग पर्वों का सारा रुपया मिल जायगा, और वह योजना की प्रारम्भिक अवस्था में ही मिल जायगा, ठीक नहीं प्रतीत होता । उन्हें अपनी इस आशा के साथ साथ कम से कम यह तो माँग करनी चाहिये थी कि हमारे स्टर्लिंग ऋण की अदायगी अवश्य होनी चाहिये और उसके बदले में हमें उत्पादक माल हमारी आवश्यकतानुसार मिलना चाहिये, जिससे कि सरकार और जनसाधारण को स्पष्ट हो जाता कि इस ऋण का भुगतान योजना की सफलता के लिये नितात आवश्यक है और वर्तमान अवस्था में यह भुगतान अपने ही आप नहीं होगा ।

धन का तीसरा साधन निर्यात का आयात के ऊपर आधिक्य बताया गया है । उनका कहना है कि उनकी बताई हुई इस नीति का पालन करने से, कि कृषि-जन्य पदार्थों को मुख्यतः देश के बाहर नहीं भेजना चाहिये, हमारे निर्यात में कमी आना अवश्यंभावी है । साथ ही साथ देश में उपभोग का सामान तथा खाद्यपदार्थों के उत्पत्ति में वृद्धि हो जाने से आयात भी कम हो जायगा । अतः साधारणतया आयात-निर्यात का भेद हमारी ही ओर रहेगा और यह आजकल की मात्रा—लगभग ४० करोड़ रुपये प्रति वर्ष—से नीचे नहीं गिरेगा । इस प्रकार १५ साल में, जो कि योजना की आयु है, हमें ६०० करोड़ रुपये इस मार्ग से मिलेंगे और यह कुल आवश्यक धन का ६ प्रतिशत हुआ । यहाँ लेखकों ने एक गलती यह की है कि उन्होंने “अदृश्य आयात” को ध्यान में नहीं रक्खा जैसे बीमा कम्पनियों की प्रीमियम, ब्रिटिश जहाजों को दिये जाने वाला किराया आदि । क्योंकि हमारी ओर जितना भी आयात-निर्यात भेद होता है उसका एक भाग अदृश्य आयातों में निकल जाता है । इसके अतिरिक्त हमारा खयाल है कि आयात-निर्यात अंतर का

^१ मेरे लेख *The future of sterling Balances*, Orient Illustrated Weekly (Calcutta), May 14, 1944, से उद्धृत ।

अनुमान योजना-निर्माताओं ने बहुत कम आँका है। यदि हमारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाय, हमारी विदेशी व्यापार सम्बन्धी नीति का आधार बढ़ा दिया जाय, तथा कृषि, उद्योगों और आर्थिक उन्नति के अन्य सहायकों की तरक्की साथ-साथ की जाय, तो यह अतर और भी ज्यादा हो सकता। अतः धन के इस मार्ग से हमें ज्यादा रुपया खींचने की चेष्टा करनी चाहिये।

धन मिलने का चौथा साधन जो इन योजना-निर्माताओं ने बताया है विदेशों से ऋण लेना है ? उनका यह कथन बिलकुल ठीक है कि विदेशों में हमारी साख बहुत अच्छी है और इसलिये हम बड़ी तादाद में उचित दर पर रुपया उधार आसानी से ले सकते हैं, मुख्यतः अमेरिका से ? हम उनके इस कथन से भी सहमत हैं कि “यदि भारतवर्ष कृत्रिम कागदी मुद्रा” के तरीके को भी अपनावे, जैसा कि शायद करना ही पड़ेगा। तब भी इसका प्रभाव उसकी विदेशी बाजारों में जो साख है उस पर ज्यादा नहीं पड़ेगा क्योंकि यह धन एक वृद्धिशील आर्थिक प्रणाली की उन्नति में लगाया जावेगा।^१ लेखकों का प्रस्ताव है कि विदेशों से हमें ७०० करोड़ रुपया उधार लेना चाहिये जो कुल आवश्यक धन का ७ प्रतिशत है ? हमारा विचार है कि यहाँ भी इन्होंने हमारी ऋण लेने और पाने की सामर्थ्य को बहुत कम आँका है। यदि उधार लिया हुआ धन अधिकधन उत्पन्न करने वाले विषयों में लगाया जायगा, यदि हम अपने ऋण का भुगतान करने को तैयार हैं, यदि हम उचित दर की व्याज देंगे और यदि हम ऋण की अदायगी के लिये किसी कोष आदि को रखने के लिये तैयार हैं, तो कोई कारण नहीं कि हमें इस रकम से बड़ी रकम ऋण के रूप में विदेशों से न मिल सके। पर इस योजना की यह बड़ी कमजोरी है कि यह ऋण के भुगतान का कोई भी प्रबन्ध नहीं करती। न तो इस काम के लिये यह कोई कार्यक्रम ही स्थिर करती है और न यह किसी कोष को ही जमा करने की बात करती है। यह स्पष्ट है कि हमें विदेशों से कितना ऋण मिल सकेगा और किस दर पर मिलेगा, यह मुख्यतः इसी प्रबंध के ऊपर निर्भर है। और हम भी यही चाहते हैं कि विदेशी ऋण

की जितनी जल्दी हो सके भुगतान हो जाय जिससे कि व्याज का बोझ हमारे ऊपर लदता न जाय ?

पाँचवाँ—और सबसे बड़ा—धन का साधन है देशवासियों की व्यक्तिगत बचत। व्यक्तिगत बचत राष्ट्रीय आय की जापान में २१.९ प्रतिशत है, रूस में १४.२, जर्मनी में ११.८, युनाइटेड किंगडम में ७.०, और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ५.० प्रतिशत। भारतवर्ष के विषय में इन लेखकों का कहना है कि “इन बातों को सोचते हुए कि वर्तमान रहन सहन का दर्जा बहुत नीचा है और ज्यादा कर लगाने के लिये, जोकि योजनात्मक प्रणाली में सम्भव होगा, कोई आयोजन नहीं किया गया। हमारे खयाल में औसतन हर साल योजना को सफल बनाने के लिये ६ प्रतिशत से अधिक राष्ट्रीय आय प्राप्त नहीं होगी।” इस आधार पर उन्होंने हिसाब लगाया है कि १५ साल के अन्दर, अर्थात् जितने समय में योजना सम्पूर्ण हो पायेगी उतने समय में, कुल बचत ४,००० करोड़ रुपये मिल सकेगी; और इस प्रकार आवश्यक धन का ४०% भाग इस साधन से प्राप्त हो जायगा।

अंतिम और सबसे ज्यादा विवादग्रस्त साधन है “कृत्रिम कागदी मुद्रा।” योजना निर्माताओं का प्रस्ताव है कि रिजर्व बैंक से, नाम के लिये कुछ पच्चीस लाख, ३,४०० करोड़ रुपये उधार ले लिया जाय। मुद्राशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार योजना निर्माताओं के “कृत्रिम कागदी मुद्रा” के उपाय की सराहना की जा सकती है और करनी चाहिये। हाँ, इसकी सफलता के लिये दो बंधन आवश्यक हैं। पहला तो यह कि कृत्रिम मुद्रा इतनी अधिक मात्रा में उत्पन्न नहीं करनी चाहिये कि मुद्रा की कुल पूर्ति उसकी माँग से अधिक हो जाय क्योंकि यदि ऐसा होगा तो मूल्यों के दर बहुत बढ़ जाँयगे। दूसरे, मुद्रा छापने वाली संस्था में जन-साधारण का पूर्ण विश्वास होना चाहिये। पहली आवश्यकता के विषय में हम मान सकते हैं कि योजना करने वाली संस्था इस बात को सदैव ध्यान में रखेगी कि कृत्रिम मुद्रा की पूर्ति माँग से अधिक न होने पावे। स्पष्टतया जब कि योजना उन्नति-पथ पर आरुढ़ हो जायगी और प्रत्येक विभाग में उत्पत्ति बढ़ने लगेगी, तब कृत्रिम मुद्रा को

हम काफ़ी मात्रा में, बिना मूल्यों के बढ़ाये हुए, कर सकते हैं। जो व्यक्ति इस योजना की इस आधार पर आलोचना करते हैं कि यह प्रस्ताव हमें चलना-बिगड़ना का शिकार बना देगा यह मान लेते हैं कि योजना करने वाली संस्था इतनी अयोग्य होगी कि वह कृत्रिम मुद्रा की पूर्ति और माँग को बराबर नहीं रख सकेगी अथवा मुद्रा बनाने वाली संस्था पर जन-साधारण का विश्वास नहीं रहेगा, जोकि निराधार कल्पनायें हैं। पहली बात के सम्बन्ध में ये लेखक-गण कहते हैं कि “मूल्यों के साधारण दर इस समय के अतः मे योजना के प्रारम्भिक काल की अपेक्षा कम होंगे। योजना-काल के अधिकांश भाग में, इस पैमाने पर आर्थिक उन्नति का कृत्रिम कागदी मुद्रा के बूते पर चलाने का परिणाम यह हो सकता है कि मनुष्यों के हाथ में जितनी क्रय-शक्ति है उसकी मात्रा और विक्री के सामान की मात्रा में और अंतर हो जाय। इस अंतर को दूर करना और मूल्यों को सीमाबद्ध करना एक निरंतर समस्या होगी जिसे योजना करने वाली संस्था को हल करना होगा। इस उपाय का यह परिणाम हो सकता है कि विभिन्न जन वर्गों पर इसके बोझ का असमान वितरण हो। और इस काल में इसको रोकने के लिये, प्रायः आर्थिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर इतना कड़ा कब्जा रखना पड़ेगा कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और व्यापारिक स्वतन्त्रता को कुछ काल के लिये ग्रहण लग जायगा।” ये कथन बहुत आश्वासनपूर्ण और सावधान हैं। ऊपर बताये हुए दूसरे विषय की बात यह है कि इस आर्थिक योजना का, कल्पना के अनुसार, एक राष्ट्रीय सरकार ही सन्तुष्ट करेगी और आगे चलायेगी, और ऐसी सरकार पर जन-साधारण का विश्वास होना अवश्यंभावी है।

हमारी सम्मति में लेखकों ने इस विषय पर जो प्रस्ताव किये हैं वे ठीक और उचित हैं। हम तो वास्तव में यह चाहते हैं कि ये महाशय अपनी योजना का आधार चौड़ा कर दें, इसके क्षेत्र को विस्तृत कर दें, इसमें जो बाते छूट गई हैं अथवा जिन पर उन्होंने कम ध्यान दिया है उनको सम्मिलित कर लें और यदि आवश्यकता हो तो कृत्रिम मुद्रा को बताई हुई मात्रा से भी अधिक मात्रा में उत्पन्न कर लें। कृत्रिम मुद्रा का खप जाना मुद्रा की

मात्रा एवं औद्योगिक उन्नति की गति दोनों पर ही निर्भर करता है, और जब तक कि इन दोनों में एक अभीष्ट मूल्य के दर पर, समानता स्थिर है, तब तक वे कोई आर्थिक हानि नहीं कर सकते। कृत्रिम कागदी मुद्रा का सिद्धान्त सबसे सस्ता; सबसे अधिक वैज्ञानिक और सबसे नया मुद्रा-सम्बन्धी उपाय है जो साधारण-काल में पूरी तरह लागू होता है और उत्तरोत्तर बढ़ने वाली आर्थिक उन्नति के समय में और भी अधिक लागू होता है।

सन्क्षेप में ये लेखकगण निम्नलिखित मागों से निम्नलिखित मात्राओं में धन प्राप्त करने का प्रस्ताव करते हैं :—

धन का साधन	करोड़ रुपये	कुल आवश्यक धन का प्रतिशत
वचत	४,०००	४०
कृत्रिम रुपया	३,४००	३४
स्टर्लिंग ऋण-पत्र	१,०००	१०
विदेशों से ऋण	७००	७
विदेशी व्यापार से	६००	६
गढ़ा हुआ धन	३००	३
कुल	१०,०००	१००

इन लेखकों ने योजना की सबसे विकट समस्या—धन की समस्या—को अच्छी तरह सुलझाया है; और उन्होंने जो हल बताया है वह ठीक और क्रियात्मक है। यही कारण है कि इस योजना ने देश के हर जन-वर्ग पर अपूर्व प्रभाव डाला है और यह छोटी सी पुस्तक हमारे हमेशा काम की बहुमूल्य वस्तु हो गई है। इस योजना ने अच्छी तरह दिखा दिया है, जैसा कि श्री धन-श्यामदास विड़ला ने कहा था, कि देश में आर्थिक योजना स्थापित करने में “धन सब से छोटी कठिनाई है।”

अध्याय ६

हमारे प्रस्ताव

हम ने पिछले पृष्ठों में उद्योगपतियों की योजना के सब पहलुओं पर मनन किया है और प्रकाश डाला है। हमारा विचार है कि यह योजना बहुत महत्वपूर्ण और मूल्यवान वस्तु है और बहुत काल तक काम देगी। इसने जनता के योजना-सम्बंधी विचारों के रुख को एकदम बदल दिया है और इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि योजना का स्थापन और उसका चलाना हमारे धन-सम्बंधी साधनों के दायरे के बाहर नहीं। इसने आर्थिक उन्नति के नये लक्ष्यों को हमारे सामने रख दिया है और हमारी आर्थिक अकाल्ताओं को अकों का चोला पहना दिया है। यह अपने क्षेत्र में एक नूतन ग्रंथ है और यह भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था से सम्बन्ध रखने वाले साहित्य में अमर स्थान ग्रहण करेगा।

पर हम लेखकों के सामने यह प्रस्ताव रखना चाहते हैं कि जैसा कि हम पिछले पृष्ठों में बता चुके हैं उन्होंने कुछ बातों पर तो बिल्कुल ध्यान ही नहीं दिया और कुछ पर कम महत्व दिया है, उन्हें चाहिये कि वे अपनी योजना को दोहराएँ और इसने इन सब विषयों को समुचित स्थान दे। कृषि की उन्नति के लिये उन्होंने जो लक्ष्य स्थिर किया है उसे उन्हें ऊपर उठाना चाहिये; और पशु, जंगल, खान आदि के पेशों की तरफ़ी के लिये आयोजन करना चाहिये। बीमा, बैंकिंग तथा अन्य धन-सम्बंधी संस्थाओं की भी उन्नति पूर्व स्थिर लक्ष्यों के अनुकूल करनी चाहिये। यातायात और संदेशवाहन के साधनों और व्यापार के सब शाखाओं पर पूरा ध्यान देना चाहिये। एक बड़ी और सम्पूर्ण योजना, जिसमें कि हमारी आर्थिक प्रणाली के हर पहलू के लिये एक सहकारी योजना होनी चाहिये, एक बड़े आधार पर बनाई जानी चाहिये; और फिर इस बात का जोरदार प्रयत्न करना चाहिये कि हम अपने समस्त प्राकृतिक एवं मानुषिक सम्पत्ति का अधिकतम सीमा तक शोषण करें और



साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग
१९४३-४४ के प्रकाशन

कहानी

- (१) हिन्दी कहानी डॉक्टर श्रीकृष्ण लाल एम० ए०
फिल० २॥

कविता

- (२) चिनारि श्री निरकार देव सेवक १)
(३) धूप की लहर श्री गोपी कृष्ण १)
(४) प्रभाती श्री सोहनलाल द्विवेदी २॥

गद्य काव्य

- (५) निर्भर और पाषाण श्री तेज नारायण काक १॥

राजनीति

- (६) हिन्दू मुस्लिम समस्या डाक्टर बेनीप्रसाद २॥

समालोचना

- (७) घनानन्द श्री शंभूप्रसाद बहुगुना ४)
(८) प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक प्रो० राजेश्वर प्रसाद अग्रवाल २)
(९) संत कबीर (संक्षिप्त) डाक्टर रामकुमार वर्मा २)

भूगोल

- (१०) भूगोल प्रवेशिका गिरवरलाल विद्यार्थी १॥

बालोपयोगी

- (११) चूहे की दुम श्री "शिष्यार्थी" १=)
(१२) छपे खिलौने श्री "शिष्यार्थी" १=)
(१३) खेल श्री नरसिंह राय शुक्ल १॥=)
(१४) नोक भोंक श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ १=)
(१५) विगुल श्री सोहनलाल द्विवेदी